रेत का घर

रेत का घर

बलवीर त्यागी

बलवीर त्यागी

संस्करण 1991

मूल्य 60/-

आवरण विमल शर्मा

प्रकाशक साहित्य निधि
29/59-ए, गली नं० 11, विश्वासनगर
शाहदरा दिल्ली 110032

मुद्रक कुमार आफसेट प्रेस दिल्ली 32

आपस की बातें

सुधी पाठको एव विद्वान् लेखक बधुओ ! मैंने कभी सोचा भी न था कि मैं लेखक बनूगा। मेरा लेखन-कार्य कैसे, कब और क्यो शुरू हुआ, यह अलग बात है। कभी अवसर मिला तो खुलकर बातें होंगी। अब तो इतनी-सी बात है कि मैंने यो ही शौकिया लिखना शुरू किया, लिखता गया, पीछे मुडकर नही देखा। सभी विधाओं मे लिखता रहा और सहृदय सम्पादको ने मुझे सभी विधाओ मे स्वीकारा। यही नही मैंने पराग, नन्दन और चपक आदि बच्चो की पत्रिकाओ म अपने नन्हे पाठको के लिए भी खूब लिखा। नौ बाल पुस्तकें लिखी। जिनमे से दो बाल उपन्यास प्रतियोगिताओ मे पुरस्कृत हुए। दो उपन्यास लिखे। दोनो विज्ञ समीक्षको ने सराहे। मेरा पहला कहानी-सग्रह बारह वर्ष पहले छपा और आज तक पाठको के पत्र प्राप्त होते हैं। कविताए पुस्तक रूप म तो नही आ सकी, किन्तु विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे छपकर मान दिला गयी। कवि-गोष्ठियो मे प्रशसित भी हुई।

बहुधा लेखको का लेखकीय जीवन कविता अथवा कहानी म शुरू होता है। विचित्र बात है कि मेरा जीवन नाटक जैसी चीज से हुआ। लेकिन अपने पहले विस्मत नाटक के बाद आज तक फिर कभी दोबारा नाटक पर कलम नही चलाई।

तो सभी विधाओ मे लिखने वाला यह अपना लेखक किस विधा का लेखक है, यह तो आप लोग ही जानें। हा मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूगा कि जो मैं लिख रहा था, मैं वह नही था। उसके अलावा कुछ और था। वे कीटाणु मेरे अन्तस म कही बुलबुलाते रहे, बिलबिलाते रहे। मुझे अन्दर-ही अन्दर कुरेदते रहे और मैं चकमक मे छिपी आग की तरह उन्हे पहचान नही रहा था। उन कीटाणुओ को पहचाना श्री सत सोनी ने जो उस समय नवभारत टाइम्स के सम्पादकीय पृष्ठ तथा पाठको के पत्रो का सपादन कर रहे थे। उन्होंने उन कीटाणुओ मे परिचय कराया कि तुम एक सफल व्यग्यकार के कीटाणु छिपाये हो। और तब से मैं अबाध्य गति से व्यग्य लिखता आ रहा हू। अब तक तीन व्यग्य सग्रह पुस्तक रूप मे पाठको के सामने आ चुके हैं और चौथा प्रेस मे जाने के लिए तुडफुडा (छटपटा) रहा है।

मैंने इतनी लम्बी बात कर आपको क्यों बोर किया ? मित्रो ! यह मैं इसलिए बता रहा हूं कि बारह साल पहले एक कहानी-संग्रह छपा तो दूसरा अब बारह साल बाद क्यों ? क्या बारह साल तक मैंने कहानियां नहीं लिखीं ? लिखीं। किन्तु व्यवसायकार ने कहानीकार को पीछे छोड़ दिया। इसलिए कहानी-लेखन कम हो गया और बारह साल के अन्तराल में लिखी गई कहानियां किसी सरकारी फाइल में पड़े कागजों की तरह आराम करती रहीं। अब मेरे प्रकाशक मित्र श्री केशव देव शर्मा ने मेरे पीछे छूटे कहानीकार की याद दिलाई तो यह कहानी-संग्रह 'रेत का घर' आपके हाथों में है। रेत का घर कहानी का नायक सारी उम्र 'रेत के घर' बनाता रहा और अन्त समय में उसे यही अफसोस रहा कि वह कुछ भी नहीं बना पाया सिवाय रेत के घरौंदे के। इस कहानी-संग्रह में लेखक ने केवल रेत के घर बनाये अथवा वह कोई सुदृढ़ भवन निर्माण करने में सफल रहा। यह निर्णय तो आप सबका होगा। जो लेखक को शिरोधार्य है। बस।

—बलबीर त्यागी

अनुक्रम

रेत का घर

'मन्नो, कोइ आया ?'

'नही ।'

'आयेगा भी नही ।' वह कराहत हुए निराश स्वर म बोला और बडबडाया—'कोई नही आयेगा। क्यो आयेगा ? किसलिए आयेगा ? किसी न मुझे साहित्यकार नही समझा। राजनीतिज्ञ नही माना। फिर कोई क्यो आन लगा ?'

उसके स्वर म अथाह पीडा थी। मन के किसी कोने मे पश्चात्ताप की कसक थी, जिसे वह सदा नकारने की कोशिश करता रहा है। किन्तु आज वह स्वीकार कर लेना चाहता है। लेकिन चिडिया खेत चुग चुकी है। बहुत देर हो चुकी है। किसी बात को स्वीकारने का अब कोई अथ नही।

'नही नही।' शब्द उसके होठो म फसे रह जात है। वह पूवत दृढ प्रतिज्ञ होता है—'मैं कमजोरी जाहिर नही करूगा। मन्नो के सामने भी नही। आखिरी वक्त मे क्या खाक मुसलमा हूगा। पहले से अपना कोई सिद्धात बनाता तो आज चारपाई के इद गिद राजनीतिज्ञो का टोला होता। मरन के बाद बुद्धिजीवी शोक सभाए आमन्त्रित करते। अखबारों म काले हाशिये बनाकर तस्वीर छापी जाती। महान् साहित्यकार, महान् राजनीतिज्ञ और महान क्रान्तिकारी जैसे शब्दो से सम्मानित किया जाता। मगर अब ऐसा कुछ न होगा। मेरी मौत सिफ कीडे की मौत भर होगी। उफ् ! पूरे जीवन की कोई उपलब्धि नही। केवल साधारण स्तर का इसान बनकर रह गया हू।

'साधारण स्तर का भी कहा ! यदि आम आदमी की जिंदगी जीता तो आज कम-से-कम नाते रिश्तेदार, कुटुम्ब-कबीले वाल चारपाई के पास होत। मेरी उच्छृ खलता मे पूरा समाज मेरे से दूर हो गया है। वे ही क्यो आन लगे ? उनके लिए तो मेरी मौत बहुत पहले हो चुकी है। जब मैं उन सबमे सम्बन्ध विच्छेद कर शहर की गोद मे जा समाया था। शहर मेरा सब कुछ लील गया मुझे सबमे काट कर अलग कर दिया वैरी ने।

एक करवट से पडे-पडे शरीर दुखने लगा था। उसने करवट बदलनी चाही। मन्ना न सहारा दकर उस करवट बदलवा दी। वह कितनी ही देर तक मूर्च्छित-सा गुमसुम पडा रहा। फिर हौले हौले आधी आखे खोलकर छत म टिका दी। कमरे म मरणाच्छन्न मौन भरा था और रात का सन्नाटा घुधिया रहा था। कभी-कभी कही दूर म उल्लू की डरावनी आवाज सुनाई पड जाती थी। गली के अन्तिम छोर पर कुत्ते समवेत स्वरों मे क्रन्दन कर रहे थे। हवा का प्रवाह प्राय रुका हुआ था।

मन्ना का दिल किसी आगत भय से ग्रस्त धडक धडक हा रहा था। उसने उठकर दीवट पर रखे मद होते दीये की बत्ती को थोडा-सा उकसा कर लौ तेज की और फिर उसक पास आ बैठी। उसने गदन को थोडी-सी जुबिश दे थकी-थकी आवाज मे पूछा—'मन्नो ! तुम कैसा महसूस करती हो ?

मन्नो समझ नही सकी। उसने बुढापे की राख स धुधियाती आखो से उसकी ओर देखा और बोली कुछ नही। शायद वह जानना चाहती थी कि वह क्या कहना चाहता है ? उसकी चुप्पी का अथ वह समझ गया। बाला—'मन्नो, मुझसे विवाह कर तुम्हे कैसा लग रहा है ?'

'आज पूछत हो ? इतन दिनो बाद ! यह प्रश्न तो तीस वष पहले पूछा जाना चाहिए था, विवेक ! मनोरमा न माथ पर लटकती सफेद बालों की लट को ऊपर करत हुए कहा—'विवक मैं अतीत म भटकना नही चाहती भविष्य मे झाकना चाहती हू। जहा मुझे घोर अधेरे के सिवा कुछ नजर नही आता।

यही तो मैं जानना चाहता था। शायद तुम्हे अब पछतावा हा रहा है।' विवेक ने अपनी अधखुली आखें मनारमा के झुर्रियो से भरे चेहर पर टिका दी।

छि, कैसी बातें करत हो ! मनोरमा ने जो कदम उठाया वह बहुत सोच-समझकर उठाया है। उसे अपन किये पर कतई पछतावा नही। मनोरमा न दृढता से कहा। वह अन्त समय म विवेक का दिल नहीं दुखाना चाहती थी। फिर भी उसका कठ आद्र हा आया था। विवेक उसकी मनाव्यथा समझ गया था और चुप हो कुछ साचने लगा था।

मनोरमा न भविष्य के धुधलके म देखना शुरू कर दिया था। वह सच बात कहकर विवेक के अन्तिम क्षणो का और दुखद नही बनाना चाहती थी। पर जो सच ह, वह सच ही रहेगा। विवेक नही रहेगा तो उस घर म वह और उसका बेटा आलाक भी न रह पाएग। उन्हे धक्के मारकर बाहर कर दिया जाएगा। विवेक की सम्पत्ति म स उन्ह कानी कौडी भी नही दी जाएगी। कानून भी उसका साथ नही देगा। विवेक और उसके विवाह का कोई प्रमाण नही।

विवक न कभी सोचा ही नही था कि कानून की पचीदगिया मनोरमा के पत्नीत्व क अधिकार को अस्वीकार देंगी। आय-समाज मदिर म मालाओ का

आदान प्रदान कर वेदी के चक्कर काट लेने भर को उसने सामाजिक एवं कानूनी वैधता मान ली थी। उसके मस्तिष्क म कभी विवाह को चुनौती देने वाली बात आई ही नही। लकिन वह कठिन स्थिति आज उसके सामने सवभक्षी बनी खडी है। उसकी आख मुदत ही उसकी पहली पत्नी के बच्चे मनोरमा को अधिकार वचिता घोषित कर देंग। एसी स्थिति म मनोरमा और आलोक सिफ निरीह बने रह जाएगे। मनोरमा कवल रखैल का दर्जा ही पा सकगी।

उसन अपने शिथिल हाथ को ऊपर उठान की कोशिश की। मनोरमा उसके मन की बात जान गयी। वह उसके पास सरक आई और अपना सिर विवक के वक्ष के निकट चारपाइ की पाटी पर टिका दिया। विवेक ने प्रयास कर अपना हाथ दोपहरी की धूप म उसके बालो पर टिका दिया। उसकी आखो के कोरो से दो बूद पानी ढुलककर कनपटी पर रेगने लगा। सूखी टहनी सी उसकी अगुलिया धीरे-धीरे मनोरमा के बालो म सुरसुराने लगी। वह पश्चात्ताप मे डूबे स्वर मे फुसफुसाया— मनो, आदमी कभी कभी भयकर भूल कर जाता है। हमारे से भी हुई। यदि हम कोर्टशिप कर लेते अथवा विवाह के समय फोटोग्राफ करा लेते तो आज तुम्हारे पास अपना पक्ष सही साबित करने के लिए थोडे-बहुत सबूत हाते। मगर हमन इस समस्या पर कभी गम्भीरता से नही सोचा। विमल ने तुम्हे कभी मा स्वीकार नही किया और अलका ने भी कभी तुम्हारे प्रति सद्भाव नही रखा। वे हमेशा तुम्हे गैर समझते रहे। इस सबका दोषी मैं हू। मैंने उन्हे गाव मे अलग क्यो रखा? क्या नही तुम्हारे पास रखा। यदि वे तुम्हारे साथ रहते तो शायद वे तुम्हे अपना समझन लगत।'

मनोरमा ने धीरे-से उसका हाथ अपने सिर से अलग किया और उसकी बुझती आखो म झाकती रही। उसने अपनी हथेली से विवेक के आसू पोछ दिये। वह कुछ क्षणो के मौन को भेदती हुई बोली— बीता समय वापस नही आता। दुखी होन की आवश्यकता नही विवेक! दुर्भाग्य न हमेशा मेरा पीछा किया ह और मैंने उसे हमेशा ललकारा ह। आखिरी जीत किसके हाथ रहेगी, कुछ नही कहा जा सकता। पर मैं सहज ही हार मानने वाली नही हू।

यह तो ठीक है तुम साहसी ही नही, दुस्साहसी भी हो। नही तो परिवार की मर्जी के प्रतिकूल तुम मेरे साथ घर छोडकर क्यो आती?' विवेक न उसकी प्रशसा करते हुए कहा— तुम शायद भूल महसूस न करो, पर आज मैं महसूस करता हू कि मैंने प्रौढ़ावस्था म बच्चो के रहत हुए विवाह क्यो किया। मैंन कभी सोचा ही नही कि तुम्हारे बच्चे मेरी पहली पत्नी के बच्चो के प्रतिद्वद्वी हाग।

यह बात हम आज सोच सकत ह। लेकिन उस समय यह साचन का समय हमारे पास कहा था? तुम्ह मेरी जरूरत थी और मुझे तुम्हारी। इसलिए मैं किसी एक की गलती नही मानती।'

'अब ?'

'अब भी नही।'

'आगे क्या सोचा ?

'विवेक तुम्हे चिंतित होने की आवश्यकता नहीं। जो जीव, चदशी सीव। सब भुगता जायगा।'

'मुझे शासन का अधिकार तुम्हे है।'

'क्यो किसलिए ?'

मैं अपने का दोषी मानता हू।'

'मगर मैं ऐसा नही मानती। कह जो दिया—अगर दायी हैं तो हम दातो।

फिर भी कोसन का अधिकार तुम्हारा ही है।'

'वह ता मैंन बहुत पहले पा लिया था। किन्तु मैं उसका उपयोग नही करूगी।

'यह तो तुम्हारी विशाल हृदयता है।'

'नारी हमेशा विशाल हृदय होती है, विवक ! वह धरती है—हर अच्छे बुरे बाझ को धारण करन वाली। उस कभी गिला शिकवा नहीं होता। हा, पौराणिक मायताओ के आधार पर जब उस पर अत्याचार हाते हैं ता भूचाल अवश्य उमका हृदय उद्वेलित कर देते हैं और उद्वलन मे वह अपना ही कुछ खोती है। उसकी छाती फटती है। दरारें पडती हैं।'

'मन्नो ! वह कुछ कहना चाहता था, लेकिन चुप हो गया।

'जी।

'आलोक कहा है ?'

'अन्दर सो रहा होगा।'

'बुलाओ।'

मनारमा आलोक को बुलाने अन्दर चली गयी। विवेक अपन अतीत म भटकने लगा।

चिरजीव !

जिस दिन स तुम दिल्ली गये हो, तब से तुम्हारी राजी-खुशी की चिट्ठी नहीं मिली। वहा जाकर सबको भूल गये हो। लगता है, तुम्हे किसी की याद नही आती, वर्ना कभी-कभार दो अक्षर लिख ही भेजते। रजनी का विवाह हा गया है। तुम्हारी और बहू की काफी इतजार की। मगर तुम नही आय। तुम्हारे चाचा चाची बहुत बुरा मान रहे हैं। एक ही लडकी थी उनकी। खैर ! जैसा जी चाहे करो। लेकिन याद रखो, भले-बुरे वक्त म अपन ही काम आत हैं। नाते-रिश्तदारो से ऐस कटाग ता समाज म अकले रह जाओगे। कभी मैं भी तुम्हारी ही तरह सोचता था। तीस

माल शहर मे नौकरी की। तुम तो जानत ही हो, लोग मेरा कितना सम्मान करते थे। लेकिन आज मुझे उनमे से कितने याद करते हैं ? शायद ही कोई जिक्र करता हो। विवेक शहरी समाज वडा वेप्रीत होता है। पडोसी पडोसी की गमी खुशी से अनभिज्ञ रहता है।

'रिटायर होने के बाद घण्टा घण्टो ताश और शतरज की बाजी जमाने वाले यार लाग मुझे निठल्ला समझकर मुह फेरन लगे थे। यह है तुम्हारी शहरी सभ्यता, शिष्टाचार।

अपने को यो तिरष्कृत होता देखकर गाव ने मुझे आकृष्ट किया। बाप-दादा के य तीस बीघे कूड मुझे गाव खीच लाये। तीस साल बाहर रहने और गाव के समाज स कटा रहन के बावजूद मुझे यहा वैसा ही प्यार मिला जैसा यहा सदा रहन से मिलता। ऐसा सिफ इसलिए हुआ कि शहरी बाबू होने के बावजूद मैंने कभी सगे सबधियो मे मुह नही मोडा। सदा उनकी शादी गमियो का शरीक बना रहा। लेकिन विवक तुमन तो शायद मा-बाप से भी नाता तोडन का फैसला कर लिया ह। तुम्हारा मा महीनो से 'गठिया' से पीडित है। खाट से लगी है। टट्टी पेशाब भी मैं ही कराता हू। वह झिगले म पडी तुम्हे और कल्पना को दखन की रट लगाय रहती है।

'शायद तुम नही आओगे। लगता ह, मेरी बातो का बुरा मान गये हो। लेकिन विवक, मा-बाप कभी औलाद का अहित नही चाहते। मैंन भी नही चाहा। उस दिन जो कुछ कहा था, केवल तुम्हारे भले के लिए कहा था। परदेस म सभलकर चलना होता है। वही सीख मैंन तुम्हे दी थी। यदि तुम्हे वह पसद नही, तो बूढे बाप का प्रलाप समझकर झटक दो।

'वैस मैंन तुम्हार भले क लिए कहा था। बेट ! केवल साहित्य सृजन से किसका पट भरा ह। प्रेस जीवन मे अनगिन साहित्यकारो की जीवनिया मेर हाथो म गुजरी हैं। सब भूखे-नग नजर आय।

'प्रेमचद जैसो को नौकरियों का सहारा ढूढना पडा। जिन्होन नौकरी नही की उन्होंने बाप-दादा की दौलत को ठिकाने लगाया और अन्त म खैराती अस्पतालो म एडिया रगडी। मर गये। कुछ दिनो तक शोक सभाओ और श्रद्धाञ्जलियो का ताना चला और फिर एस हो गये, मानो दुनिया म कही नही थ। सिफ कुछ लाग ही इतिहास के पन्नो तक पहुच पाये ह।

'बेटे ! मैं यह सब इसलिए नही लिख रहा हू कि मुझे साहित्य अथवा साहित्यकार स घृणा है। बहुत प्यार करता हू। बडे सम्मान की नजरों स दखता हू इन लागो को। मगर भूखे भजन न होय गोपाला।' भरे पट ही कुछ सूझता ह। सौ-सौ रुपये म पुस्तको की पाण्डुलिपि बिकन वाले इस दश म अखबारो म बीस बीस रुपयो म रचनाए छपवाकर कैसे गुजारा करोगे, बेटे ! आज तुम सिफ दो प्राणी

हो। कल दो से तीन और चार भी होंगे। जिस बहू के लिए मैंने राजकुमारियों की सुविधाएं जुटाई हैं उसे पबंद लगी साड़ियां पहनाओगे क्या ?

'शायद मेरी बातों से तुम तिलमिला गये होगे। सच कह रहा हूं न, और सच हमेशा कड़वा होता है। पर होता है कल्याणकारी। मेरी बात मानो। कोई नौकरी कर लो। नौकरी के साथ साहित्य-साधना करो। सभी नामी गिरामी लेखक नौकरियों से बंधे हैं। शायद थोड़े बहुतों से तुम्हारा परिचय भी होगा। और क्या लिखूं। अपना भला बुरा सोचने में तुम स्वयं समर्थ हो। समय मिल सके तो कल्पना को मिला ले जाओ। शेष सब कुशल है। आओगे, ऐसी ही आशा है।

तुम्हारा पिता
हरकेश सिंह'

विवेक ने पत्र समाप्त कर एक लम्बी सांस ली। चारमीनार के पाकिट में सिगरेट निकालते हुए उसने कमर कुर्सी की बैक रेस्ट से लगाकर मेज पर पैर पसार दिये। सिगरेट सुलगाकर मुंह को चिमनी का आकार देते हुए धुएं का ढेर सारा बादल उगल दिया। सांप की तरह लहराता हुआ धुआं एक नम्बर पर रिरियाते पंखे की ओर उठने लगा। उसने पिताजी की सीख का कभी बुरा नहीं माना था। पर दिल्ली आने के बाद वह इतना व्यस्त रहने लगा था कि चाह कर भी गांव नहीं जा पाया था। उसके मस्तिष्क में पत्र की पंक्तियां कानखजूरे की तरह सुरसुराने लगी थीं। एक वर्ष पांच महीने के दिल्ली प्रवास के अनुभव ने पिता के शब्द साकार कर दिये थे—

'जा रहे हो ?'

'जी।'

'कल्पना ?

'वह भी।

'वहां जाकर क्या करने का फैसला किया है ?

'फिलहाल कुछ तय नहीं।'

'फिर भी ?'

'अखबार और पत्रिकाओं में लिखने का विचार है।

'हूं।' पिता गंभीर हो गये। थोड़ी देर तक सोचते रहे और फिर बोले। कितना कमा लोगे ?

ठीक से बताना कठिन है।

अनुमान तो लगाया ही होगा ?'

तीन चार सौ। बाद में।'

बस बस। आगे न बढ़ो। मैंने सारी उम्र काम प्रेस में किया है। तुम सौ रुपये भी कमा पाओगे मुझे संदेह है।'

'आपका सदेह निरथक है।' वह अपनी काय क्षमता, कुशलता पर प्रहार होता देख झुझला गया। उसे अपन पर भरोसा था कि वह लेखन मे काफी कमा सकता है। उसन विद्यार्थी जीवन म ही साहित्य मे नाम पैदा कर लिया था। कोई पत्र-पत्रिका ऐसी न थी, जिसम उसकी रचनाए न छपी हो।

कुछ दर तक कमरे मे अशोभनीय मौन भरा रहा। कल्पना अन्दर वाले कमरे म सफर की तैयारी कर रही थी। मा उनके लिए रास्त का खाना बना रही थी। रसोई से कभी-कभी बर्तन खडकन की आवाज आ जाती थी। कल्पना का सदूक को बद करना-खोलना भी कभी-कभी निस्तब्धता को भग कर जाता था। पिताजी ने खखारकर गला साफ करत हुए कहा—'विवेक, तुम चले जाओ। कल्पना को यही रहने दो।'

विवेक के हाथ रुक गये। बुशशर्ट के बटन हाथ की उगली मे फसे रह गय। उसने पिताजी की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा।

'मैं ठीक कह रहा हू, बेटे! पहले तुम वहा जाकर काम जमाओ। मकान की व्यवस्था करो, फिर बाद मे बहू को ले जाना।' हरकेश सिंह न अपन अनुभव के आधार पर कहना जारी रखा—'तुम नही जानते, विवेक! प्रदश मे कितनी दिक्कत सामने आती हैं। कल्पना के रहने की क्या व्यवस्था की है? निश्चित बात है, धमशाला अथवा होटल म तो रह नही सकोगे।' अतिम वाक्य उन्होंने विद्रूप भाव से कहा था।

'मैंने अपन मित्र राजन को पत्र लिख दिया है। व्यवस्था होने तक हम उसके यहा रहेगे।'

हरकेश सिंह कुछ देर तक चुप रहे और फिर बाहर जाने के लिए उठ खडे हुए। बोले—'मेरी अपनी राय के अनुसार यह ठीक नही होगा।'

'क्या ठीक नही होगा?' विवक कुर्सी के हत्थे पर पैर रखे जूत के तसमे बाध रहा था। उसने गदन को थोडी-सी जुबिश दे पिता की ओर देखा।

'मैंन तुम्हे इसलिए पढाया था कि कोई अच्छी नौकरी कर सको और सुखी रहो। बुढाप म हमारी ।' उन्होंने बात बदल दी। फिर निहायत उदास स्वर म आगे बोले— खैर! जाने दो। हमारा क्या? जमीन से इतना तो मिल ही जाता है कि हम दो जना का गुजारा चल सके। अपना तुम जानो।'

'पिताजी आप हमारी चिंता क्या करते हैं? आपन अपना कतव्य पूरा कर दिया। अब मुझे रास्ता खोजना है।'

'खाक रास्ता खोजोगे! जो आदमी समझान पर भी नही समझ पा रहा, वह रास्ता क्या खोजेगा।' हरकेश सिंह थोडा उत्तेजित हो गये—'एक ही रट लगी है, साहित्य साहित्य। माना मैं साहित्य और साहित्यकारो के बारे कुछ नही जानता। सारी उम्र इन्ही लोगो के बीच मे कटी है। साले सब कज की मय पीने

वाले हैं। सौ-पचास जेब म आ गये तो शहनशाहे हिंद बन गये। वर्ना चाय घर मे बठकर दूसरो का मुह ताकने लगे।'

'पिताजी, मैं यह अपमान सहन नही करूगा।' विवेक का स्वर भी तीखा हो गया।

'सहन क्यो करोगे बुखुरदार? उस दिन याद आएगी मेरी बातें, जिस दिन दिल्ली की सडको पर टूटी चप्पल और घिसी पैंट पहने मटरगस्ती करोगे। घर मे चूल्हा रमजान से रहेगा। पत्नी स रोज झूठ बोलोगे, आज प्रकाशक नही मिला, सपादक महादय बाहर गये हैं।' कहते-कहते वह दरवाजे की ओर बढ आये और आग बोले— तुम्हारे जैस हवा मे जीने वाले लोग कभी सुखी नहीं रह सकते।'

'यही है आपका आशीर्वाद?' विवेक के स्वर मे व्यग्य की पुट उभर आयी थी, 'एक बाप वह था जिसन तू म्हारो नाम बढायेगो हरिश्चद' कहकर बेटे का होसला बढाया था और एक आप हैं, जो बेट पर शुभ वचनो की पूजा-वर्षा कर रहे हैं।

हरकेश सिह क बढते कदम रुक गये। उन्हें गलती का अहसास हुआ। बेटा जवान हो गया है। बुजुर्गों का कहना है कि जब लडका बाप का कद छूने लगे तो उसे मित्रवत समझना चाहिए। वह अपन को सयत करत हुए स्वर म भरसक कोमलता लाते हुए बोले— बेटे, जो मैं कह गया हू, वह एक बाप का अधिकार था। भगवान तुम्हारा मगल करे। तुम भी एक दिन भारतदु की भाति चमको।

सिगरेट का ताप उगलियो को गम करन लगा था। विवेक न थोडी कमर सीधी की। सिगरेट राखदानी म डाल दी। पत्र को एक बार फिर पढा और आखे पखे की पखन्यिो म अटका दी।

दिल्ली आन पर उस किसी प्रकार की असुविधा नही हुई थी। उसका मित्र मूर्तिकार राजन और उसकी पत्नी दीप्ति स्टेशन पर पहने से उपस्थित थे। जैसे ही उन्हान सपत्नीक विवेक को डिब्बे स उतरत देखा, व फुर्ती से उस ओर बढ गये। राजन ने विवक को भुजाओ मे भरकर चकरघिन्नी घुमा दिया। किलकारते हुए वह बोला— 'गाव के ढूढलो से बहुत प्यार हो गया था क्या अथवा कल्पना भाभी ने जादू स मक्खी बनाकर डिबिया मे बन्द कर लिया था।

कल्पना कुली से सामान उतरवा कर एक ओर खडी थी। अपनी प्रशसा सुन वह सकुचा गई। उस पहली बार महसूस हुआ था कि वह भी प्रशसा पान योग्य है। विवक न कभी खुलकर उसे सराहा नहीं था। एस मौको पर वह केवल मुस्करा भर देता था। एक ऐसी मुस्कान, जिसका स्पष्ट अथ होता था कि कल्पना अनिद्य सुन्दरी है।

सच, कल्पना बेदाग सुन्दरता की स्वामिनी थी। कभी-कभी तो वह आईने के सामने अपने रूप का जायजा लेती हुई खुद शर्मा जाती थी। एक बार विवेक के मुह मे अपनी प्रशसा सुनने की ललक मे उसने विवेक से कहा था—'मैं तुम्हें कैसी लगती हू ?'

वह कह तो गयी, पर साथ ही लजाकर दातो मे अपनी उगली भी काट गयी। विवेक के होठो पर वही चिरपरिचित मुस्कान बिखर गयी। बोला कुछ नही। उसने कल्पना का गोल चेहरा हथेलियों मे समेट लिया। एक पल एकटक उसकी नीली आखो मे अपनी तस्वीर देखता रहा और फिर बोला—'चाद से कहो कि तुम बहुत सुन्दर हो तो शब्द अपनी महत्ता नही खो देंगे क्या ? और यदि कह दिया जाय कि तुम्हारे मुखडे पर भद्दे दाग हैं तो क्या वह कुरूप हो जायेगा, कल्प !' विवेक ने अपने गर्म होठ ठीक उस जगह चिपका दिये, जहा एक नन्हा सा तिल उसके कपोल पर बैठा था।

राजन को मित्र मिलन के उछाह मे ध्यान ही नही रहा था कि वह दीप्ति को पीछे छोड आया है। दीप्ति आ गयी। पूर्व-परिचिता की भाति उसने कल्पना को आगोश मे ले, स्नेह से उसका सिर सूघ लिया। कल्पना पुलकित हो गयी। उसे आशा न थी कि उसका ऐसा सत्कार किया जायेगा। वह रास्ते भर सोचती रही थी कि न जाने कैसे स्वभाव के होगे वे लोग। एक अनजाना-सा भय था उसके मन मे।

विलग हो, वे दोनो फोटो खिचवान जैसी स्थिति मे खडी हो गयी। मानो कोई ग्राफर अभी आयगा और उनकी छवि कैमरे में बद कर लेगा। सयोग। कल्पना कत्थई रग की साडी पहने थी और दीप्ति टमाटरी। रूपा की रूपवाली ये दोनों रमणिया ऐसी लग रही थी, मानो मखमली म्यानो से दो अधखिची तलवारें चमक रही हैं। दोनो का शरीर-गठन एक सा। न छोटा न लम्बा। न मोटा, न दुबला। दोनो के शरीरो के किसी बिन्दु से यदि रेखा गुजारी जाय तो सरल रेखा बने। अतर था तो बस इतना कि दीप्ति शुकनकी थी और कल्पना सूचिका नासिका वाली थी। चलने को हुए तो राजन का ध्यान गया उन गुडियो के जोडे पर। वह विलोडित हो बोला, सुभान ! दिल मे शम्मा, वह भी एक नही, दो-दो।'

हटो भी, नजर लगाओगे क्या ?' दीप्ति ने आनदित हो गाल मे जीभ घुमाई और कल्पना की आखो की दहलीज के फाटक स्वत उढक गये।

भई वाह ! क्या उपमा ढूढी है। जवाब नही।' विवेक ने राजन की कमर मे हाथ डालकर दाद दी।

'सच कह रहा हू, विवेक भाई ! मुझे दो ऐसे ही माडलो की आवश्यकता थी। आज ही काम शुरू कर दूगा। इन दोनो को सगमरमर मे उतार दूगा। जानते हो

शीषक क्या दूगा ?'

'क्या दोगे ?' प्रत्युत्तर म प्रश्न कर विवेक ने मुह खाल दिया।

'स्वगच्युत अप्सराए।'

'सुन्दर, अति सुदर !

चुगद कही का। लगा मस्काबाजी करने।' कहकर वह कल्पना की ओर उ मुख हो बोला—'भाभी, यह साला हमेशा मक्खनबाज रहा है। जब हम पढते थे तब भी। मैं किसी काली-कलूटी क्लासमेट पर फबती कसता, वल्लाह क्या हुस्न पाया है तो यह भोंदू कहता—बिलकुल कोह काफ की परी है। और जब मैं किसी खूबसूरत बला पर छीटा फेंकता कि देखो तो कैसे इतरा कर चल रही है। मानो इस वष उवशी पुरस्कार इसे ही मिलेगा। मुह का व्यास पूरे पांच इच फटा ह तो यह हुलसकर कहता भाईजान ! ठीक कह रहे हो। सफेद चमडी तो सुअर की भी होती है। शरीर के अगो म कोई हारमोनी भी ता हानी चाहिए। शक्ल चुडैलो की हिमजाज परिया के।'

विवेक अपनी भद् पर अ दर-ही-अन्दर कट कर रह गया। खिसियाकर बोला—'साले, सारी रामायण यहा प्लटफाम पर ही बाच देगा या घर के लिए भी कुछ रखेगा। चलो, बहुत थके हैं। भूख भी लगी है।'

'कुली स सामान उठावाओ। घर चलकर गप्प-गोष्ठी की जायेगी।'

दीप्ति ने विवेक का सहारा दिया—'बहुत वाचाल हैं। बुरा न मानना।'

'नही-नही, भाभी ! ऐसी कोई बात नही। मैं इस हरामजादे की आदत से वाकिफ हू। विवेक ने झुक्कर ब्रीफकेस उठा लिया और राजन कुली के सिर पर सामान लदवाने लगा।

राजन ने अपन फ्लैट का एक कमरा पहले ही विवेक के लिए खाली कर सजा दिया था। गृहस्थी की छाटी मोटी चीज भी जुटा दी थी। शहर मे आते ही विवेक कहा दौडा फिरेगा। कमरे म प्रवेश कर कल्पना को अपना घर-सा प्रतीत हुआ। अजनबीपन बिलकुल नही अखरा। वह मन-ही मन राजन दम्पति की कृतज्ञ हुई। भला ससार म एसे भले दोस्त कितन मिलते हैं !

राजन न कमरा उ ह सभालते हुए कहा विवक, कमरा तो शायद पसद आ ही गया होगा ? तुम्हारी जरूरत का सब समान मैंने जुटा दिया है। किसी चीज की आवश्यकता हो तो दीप्ति से ले लेना।

'मगर मैंन पत्र मे अलग फ्लट का प्रबध करने के लिए लिखा था।'

'वह भी हो जायेगा। फिलहाल इसमे रहो। पहले काम जमा लो। वर्ना फ्लैट का किराया चुका नही पाओगे। यहा दिल्ली मे मकान के किराये बहुत महगे हैं।

'मेरे पास पैसे हैं। मा ने चलते समय दिये थे।'

'ठीक है। सम्भाल कर रखो। आडे वक्त मे काम आयेंगे।' कहकर राजन ने विवेक का समझाया—'विवेक, यह शहर है। मिट्टी तक मोल मिलती है। यहा बिना काम के टिकना बहुत कठिन है। फिर तुम तो ऐसी कठिन मजिल पर बढने का इरादा कर रहे हो, जिसकी शुरुआत ही अक्सर फाकामस्तो से होती है। फ्रीलान्सिग मैंने भी करके देखी है। आखिर तग होकर वास्तुकला विभाग की नौकरी करनी पडी।'

विवेक उसकी बात को गभीरता से सुन रहा था। कल्पना घर से लाया सामान यथास्थान सहेजने मे व्यस्त हो गयी थी और दीप्ति उनके लिए चाय नाश्ता तैयार करन मे लगी थी। विवेक न उसकी बात का अनुमोदन किया—'राजन, शायद तुम ठीक कहते हो। पिताजी का भी एसा ही मत है। लेकिन मैं समझता हू, नौकरी मे आदमी को अपनी आत्मा का हनन करना होता है। उस परिस्थितियो से समझौता करना होता है। वह कला के प्रति ईमानदार नही रह पाता। वह दब्बू हो जाता है।'

'मैं इस विषय पर बहस करन के मूड म नही हू। अनुभव स जा चीज आती है, वह ठास होती है। एकदम सोलिड। मैं भी यही चाहता हू कि तुम कुछ दिनो फ्रीलासर रहा। साहित्य की दुनिया के किसी क्षेत्र से अनभिज्ञ न रहो। तभी तुम सफल साहित्यकार बन सकोगे अन्यथा हवा मे हाथ-पैर मारत रहोगे।' विषय का समापन करत हुए राजन ने कहा। तभी रसोई से दीप्ति की आवाज आई—बेचारे थके-हारे हैं। नाश्ता-पानी हो लेन दो। फिर गाप्ठी जमेगी।'

और राजन बाथरूम की ओर इशारा करत हुए उठ खडा हुआ। बोला—'सामने टायलेट है। फारिग हो लो। तब बाते करेंगे।'

विवेक दिन रात काम मे जुट गया। पत्र पत्रिकाओ के लिए लिखता। लिखने के बाद पढकर राजन को सुनाता। तक वितक हाता, और तक सगत सशोधन वह स्वीकार कर लेता। अच्छी रचनाआ पर गाष्ठियो का आयोजन भी किया जाता। कुछ ही दिनो म साहित्यिक क्षेत्र म विवेक की धाक जम गयी। सपादको स उसकी घनिष्ठता बढ गयी। विशेषाकों के लिए उसस रचनाए मागी जाती। दिनो दिन उसकी ख्याति का सूरज चढ रहा था। लेकिन उस पता न था कि प्रसिद्धि पा लेना उतना कठिन नही, जितना उसे बनाये रखना।'

वह प्रसन्न था, यदि उसे इसी प्रकार सफलता मिलती रही तो नि सदेह वह एक दिन चोटी के साहित्यकारों मे होगा। लेकिन आर्थिक समस्या अब भी उसे परेशान किये थी। वह जितना कमा पाता था, उसमे गृहस्थी का खच चलना कठिन हो रहा था। आय बढाने के लिए उसे और लिखना होगा, और प्रयास करना होगा। इसी धुन मे वह भूल गया कि वह व्यावसायिकता की ओर बढने लगा है। साहित्य

के गगन मे चमकत ख्याति के सूय पर धूल का आवारण चढने लगा ह। रचनाओ का स्तर गिरन लगा है।

उससे सोचा था कि अधिक लिखन से अधिक आय होगी। मगर उसका यह कोरा भ्रम निकला। जिस पथ को उसने इतना सुगम समझा था, वह अत्यन्त सकीण एव कटकाकीण निकला। आय का जो लक्ष्य निर्धारित किया था, वह कोसो दूर हटता नजर आ। लगा। जो रचनाए छपती थीं उन पर अच्छी-से-अच्छी पत्रिका पचास-साठ स अधिक नही देती थी और छाटी-मोटी पत्रिकाओ का तो कहना ही क्या? पाच दस का मनीआडर उसक मुह पर मार कर मानो उसके लेखक हान का मजाक उडाती थी। कई बार साचा कि धन्यवाद सहित लिख कर पत्रिकाओ के व्यवस्थापको का उनकी खरात लौटा दे अथवा मनीआडर पर हस्ताक्षर कर इन दस रुपयो का डाकिए को बक्श दे। मगर वह कभी ऐसा नही कर पाया। सोचता, जो मिल रहा ह सो ठीक। कम-स-कम टी हाउस का एक शाम का खर्चा तो चलेगा ही। अथवा न आये फल, दो जून की सब्जी भाजी का काम तो चलेगा ही। ज्यादा कमाने के लिए और ज्यादा काम करना चाहिए।

इस धुन म कम लिखा, अच्छा लिखा' का सिद्धात टूट गया। रचनायें वापस आन लगी। वह वापसी का लिफाफा खोलकर मन-ही-मन कुढता—'क्या हो गया सपादको को? सबके रटे रटाये एक जैसे फिकरे पुर्जियो पर लिखे रचनाओ के साथ चिपके होते थे। सम्पादक के अभिवादन एव खेद सहित। स्थानाभाव के कारण रचना का उपयोग न हो सकेगा। अस्वीकृति के लिए क्षमा, रचना लौटा रहा हू ताकि अन्यत्र प्रयोग मे आ सके।' आदि।

वह चिढकर पुर्जियो को चिंदी चिंदी कर हवा मे बिखेर देता। मानो उसन अपना आक्रोश हवा म उछाल दिया हो। किन्तु उसने कभी अपने गिरत स्तर की ओर ध्यान नही दिया। सारा क्सूर सम्पादकों के माथे मढकर मन को सात्वना दे लेता।

कुछ ही दिनो मे हालत यह हो गई कि जा डाकिया कभी देवदूत लगता था, जरूर कोई चैक अथवा मनिआडर लेकर आया होगा वही अब यमदूत लगता है। उसके हाथ मे लम्बा लिफाफा देखकर दिल जोरो से धडकन लगता है। कापत हाथो से कभी लिफाफा खोल लेता है तो कभी बिना खोले ही मेज पर पटक दता है। खीझकर मन ही मन भारी भरकम गाली देता है—'साले, उल्लू के पटटे मिलन पर ऐसा दर्शाएगे मानो मैं ही प्रेमचन्द अथवा टैगोर हू और कमर फेरत ही रचना का लिफाफा बदलने म दर नहीं लाएगे।'

राजन ने कई बार दबी ज्बान म समझाने की असफल चेष्टा की— विवक, माना कि तुम अच्छा लिखते हो लेकिन ज्यादा लिखने की हवश मत पालो। तुम नही जानत कि इस हवश के कारण तुम्हारा पतन होना निश्चित है।'

'तुम्हे सिर्फ हथौड़ा-छेनी चलाने आते हैं। वही तक सीमित रहो।' वह चिढ़कर कहता और परिणामत अब राजन ने उसकी रचनाओ पर अपनी राय दना कतई बन्द कर दिया था। सिफ एक श्रोता की भाति— 'हा-हू' कर टाल जाता था।

लेकिन उसन कभी अपने गिरहबान म झाकन की कोशिश नही की। कभी रचना क गुण-दोषों को परखने की आवश्यकता नही समझी। समझता भी क्यो? उसका उदय धूमकेतु की भाति हुआ था। वह थोडा दम्भी भी हो गया था। किसी रचना पर किसी साहित्यिक मित्र की सलाह मानना अब उम निरथक जान पड़ता था। यदि कोई पूछ लेता—'विवेक भाई, आजकल क्या लिखा जा रहा है?' तो वह लापरवाही स कहता, 'अमुक रचना लिखी थी। अमुक पत्रिका को भेज दी ह। प्रकाशित होन पर दिखाऊगा।'

किन्तु अब ऐसा अवसर कभी कभी ही आता। अधिकतर रचनाए लौट आती और वह यह मानकर कि कभी जब उसके साहित्य का मूल्याकन किया जाएगा तो इन रचनाओ की खोज-खबर की जाएगी। रचना को अलमारी म सुरक्षित रख दता।

राजन भी इस बीच अच्छी तरह समझन लगा था कि विवेक खरी आलोचना से तिलमिला जाता ह। रचना को सुधारन के बजाय तक स कुतक पर आ जाता है। इसलिए उसने इस विषय पर उससे बातचीत करना ही बन्द कर दिया। नौबत यहा तक पहुच चुकी थी कि एक छत के नीचे रहत हुए दोनो मित्र बहुत दूर हो गए थे। एक-दूसरे के लिए बिलकुल अजनबी बन गए थे।

विवेक का यह रवैया आत्मघाती सिद्ध हो रहा था। जिन रचनाओ को वह अपना मास्टर पीस मानता था वे दो कौडी की भी न बन पाती थी। एक दिन 'कल्याणी के सपादक मातण्ड जी ने स्पष्ट कह ही दिया— विवेक, तुम्हे दिनो दिन क्या होता जा रहा है? कितना अच्छा लिखत थ। रचनाओ की प्रशसा म पाठको के सकडो पत्र मिलत थे। लेकिन वही पाठक हम आपकी रचनाए न छापन की सलाह देते है। भाई मेर थोडा लिखो, अच्छा लिखो। ऐस लिखने स क्या फायदा? हमे भी पत्रिका के स्तर का ध्यान रखना होता है।'

स्पष्टोक्ति से विवेक कबाब हो गया। उसन सपादक की ओर बढाई रचना वापस अपनी ओर सरकाते हुए खीझकर कहा— लिखता तो अब भी वैसा ही हू। बल्कि पहले स अच्छा लिखता हू। सिफ समझ का फर ह। लगता है पाठक मेरे से भी घासलेटी रचनाओ की अपेक्षा करत हैं।

उसकी आवाज की खीझ और विद्रूपता को मातण्ड जी भाप गए। वह ठहरे मजे हुए खिलाडी। पूरे बीस वर्षों से कल्याणी का कुशल सपादन कर रहे हैं। विवेक जैस न जाने कितनो ने उनके दफ्तर की चौखट पर नाक रगडी ह। वह

व्यग्यात्मक स्वर मे बोले—'न भाई, हमे ऐसी रचनाए बिलकुल नही चाहिए, जो समझ से परे हो।'

'फिर लैला मजनू के किस्से लिखू?' विवेक के स्वर मे स्पष्ट ढीठता भरी थी।

'विवेक, तुम समझते हो कि लैला-मजनू के किस्से लिखना आसान है। उस क्षेत्र का अनुभव किए बिना वह भी नहीं लिखे जा सकते। कभी लडाई है इश्क की पेचें?' मातण्ड जी चुहलबाजी पर आ गए।

लेकिन अतिम वाक्य विवेक के लिए चुनौती था। वास्तव मे विवेक ने पत्नी-प्रेम के सिवा और कोई फल नही चखा था। वह खिसियाकर खडा हो गया और सपादक जी की चुनौती स्वीकारता हुआ बोला—'ठीक है, अब उस क्षेत्र का अनुभव किया जाएगा।'

कल्याणी के दफ्तर से निकलकर विवेक टी-हाउस की ओर चल दिया। वह पूरे रास्ते मातण्ड जी की चुनौती पर विचार करता रहा, सोचता रहा। टी हाउस मे आने जाने से उसकी काफी लोगो से जान-पहचान हो गई थी—कवि, लेखक, मूर्तिकार और आर्टिस्ट। उन्हीं में थे एक चालू लेखक घसीटा चन्द 'बिजली'। बिजली साहब 'जानेमन पाकेट बुक्स' मे कई नामों से छपते थे। उनके रोमानी और सेक्सी उपन्यास केवल उनके उपनाम 'बिजली' से प्रकाशित होते थे। बिजली साहब युवक-हृदय सम्राट् उपन्यासकार मान जाते थे। जैसे ही जानेमन पॉकेट बुक्स का सेट बाजार मे आता कालिजियेट छोकरे छोकरिया जलेबी पर मक्खियो की तरह बुक स्टालों पर टूट पडते। दस-पाच दिन मे ही बिजली साहब के उपनाम का पूरा सस्करण बिक जाता। उनके हर उपन्यास के अन्त मे एक छोटा-सा विज्ञापन छपा होता—'युवक-युवतियो के प्रिय लेखक बिजली जी के बिजली गिराने वाले उपन्यास की प्रतीक्षा कीजिए। शीघ्र प्रकाशित हो रहा है। निराशा से बचने के लिए अपनी प्रति अग्रिम बुक कराइए।'

सच ही उसके उपन्यास बिजली गिराने वाले होते थे। कच्ची वय के लडके लडकियो पर ऐसी बिजली गिरती कि वे क्लास रूम मे भी कोर्स की किताबो के बजाय डेस्को के नीचे छिपाकर अपने 'हृदय सम्राट' के उपन्यास पढते।

बिजली! बिजली!! बिजली!!! चारो ओर बिजली। मार्किट मे बिजली जी की चमक मे दूसरे उपन्यासकार भोर के तारे के समान टिक नहीं पाते थे। उनके हर उपन्यास का पाच दस हजार से कम सस्करण नहीं छपता था। जानेमन पॉकेट बुक्स मालामाल हो रही थी, लेकिन स्वय बिजली साहब आज भी फटीचर हालत मे देखे जाते थे। उनकी किताबो की कापीराइट जानेमन पॉकेट द्वारा हजार-पाच सौ देकर सुरक्षित कर लिये जाते थे। बस छाछ बिजली साहब के हिस्से मे आती

थी और मलाई जानेमन पॉकेट बुक्स के मालिक जानकीदास के हिस्से में। कभी-कभार आड़े वक्त मे बिजली साहब की सौ-पचास की सहायता कर जानकी दास अपनी उदारता का सबूत भी पेश कर देते थे। वैसे इस उदारता के पीछे जानकीदास का स्वाथ निहित था। वह इस प्रकार बिजली साहब के नवीनतम उपन्यास के कापीराइट सुरक्षित कर लेते थे। ताकि यह दुधारू गैया किसी और के खूटे पर न जा सके।

'हा, बिजली साहब की लिखन की गति काफी तेज थी। वह महीने मे कम-से-कम दो उपन्यासो की पाडुलिपिया अवश्य तैयार कर देते थे। इस प्रकार रोटी-दाल की समस्या उन्हे कभी परेशान नही करती थी।

जब विवेक टी-हाउस म पहुचा तो आधे से अधिक कुर्सिया आने वालो की इन्तजार मे थी। उसने टी हाउस के दरवाजे पर खडा होकर अन्दर हाल मे निगाह दौडाई। शायद कोई परिचित चेहरा नजर आ जाए। एकाएक उसकी मुखमुद्रा खिल उठी। बिजली साहब अपने निश्चित कोने म मेज पर कुहनिया टिकाए बैठे थे। उगलियो मे चारमीनार फसी थी। जिसमे धुए का साप छत की ओर लहराता हुआ ऊपर उठ रहा था। वह उसी ओर बढ गया। अपनी ओर विवेक को आता देख बिजली साहब के चेहरे पर रौनक आ गयी। उसने तपाक से स्वागत किया—'आओ विवेक भाई! कई दिनो बाद दिखाई पडे हो?'

प्रत्युत्तर म विवेक ने मुस्करा भर दिया और बिजली के सामने वाली कुर्सी पर बैठ गया। बिजली साहब ने राखदानी म सिगरट झाडते हुए पूछा— काफी, चाय? क्या चलेगा?

'कुछ भी मगवा लो।' विवेक ने छोटा-सा उत्तर दिया।

वेयरा आया। दो गिलास पानी मेज पर रख काफी का आडर लेकर चला गया। बिजली और विवेक मे बातो का सिलसिला शुरू हुआ।

आजकल क्या लिख रहे हो?'

'कातिल हसीना।' उत्तर द पूछा बिजली ने—'और तुम?'

'कहानी लिखी है। सुनाऊ?' सोत्साह विवक न बग स लिफाफा निकालत हुए कहा।

'जरूर सुनेंगे। पहले काफी आन दो। चुस्की के साथ कहानी सुनन-सुनाने का आनन्द ही कुछ और होता है।' बीच मे रोकते हुए बिजली साहब न चारमीनार की डिब्बी उसकी आर बढा दी।

विवेक न सिगरेट सुलगाई। वह काफी की बमब्री स इन्तजार कर रहा था, कि कब काफी आय और कब कहानी पाठ शुरू हो। तभी सामने स कविवर 'रसिक' साहब उनके पीछे लेखक चक्रपाणि' और उर्दू के उभरते शायर 'तीर' साहब उसे अपनी मेज की ओर बढते दिखाई दिए। उसने कश खीचकर धुए की रेल बनाते हुए

कहा—'बिजली साहब तीन काफी और मंगाइये। भाई लोग आ रहे हैं।'

बिजली जी का स्वाद कुछ तीता हो गया। मन-ही मन एक गाली बकी—'साले ऐन मौके पर न जाने कहां से टपकते हैं? कभी एक पैसा खर्च नहीं करेंगे और बात ऐसी करेंगे मानो इनसे बड़ा रईस कोई नहीं।'

लेकिन प्रत्यक्ष में इतना ही कहा—'ठीक है, तुम्हारी कहानी पर छोटी-सी गोष्ठी हो जाएगी।'

बेयरा काफी लेकर आया और बिजली साहब ने तीन काफी और लाने का ऑर्डर दे दिया।

आमने सामने विवेक और बिजली बैठे थे। दो बराबर वाली कुर्सियों पर रसिक और तीर बैठ गए। चक्रपाणि ने पास वाली मेज के साथ लगी कुर्सी उस ओर घुमा ली। विवेक और तीर साहब ने अपनी कुर्सियां थोड़ी पीछे खिसकाकर चक्रपाणि की कुर्सी बीच में फंसा ली। मेज पर प्यालों को देखकर तीर साहब ने तीर छोड़ा—'अमां पांच अदद मौजूद हैं और काफी तीन दो।'

'हुजूरे आला आने से पहले फोन कर दिया होता तो पहले ही पांच प्याले मंगवा लेते।' बिजली साहब के स्वर की चिढ़ विवेक ने भांप ली और बात का रुख बदलने की गरज से उसने अपना प्याला तीर साहब की ओर खिसका दिया। दूसरा प्याला चक्रपाणि की ओर बढ़ाते हुए वह बोला—'अभी और काफी आ रही है। हमने आपके नमूदार होते ही आर्डर दे दिया था।'

'शुक्रिया!' कहकर तीर साहब ने दूसरा तीर साधा—'मियां, कुछ खाने-वाने को भी मंगवाया है?'

'काफी हमने मंगवा ली है। थोड़ा आप भी तो कष्ट कीजिए।' बिजली साहब होंठों में बोले।

'अमां अपनी महीनों में एकाध गजल छप पाती है। लेकिन आप तो महीने में दो नाविल छपवा रहे हैं। थोड़ा भाई लोगों पर खर्चा कर दोगे तो हर्ज क्या है?'

'आप भी शायरी छोड़कर नाविल लिखना शुरू कर दीजिए।' बिजली साहब ने चुटकी ली।

'बंधुओ! आप लोग वाद विवाद में फंस गए हैं। इस बेचारी काफी का क्या कसूर है? क्यों ठंडी कर रहे हैं।' बेयरा तब तक मेज पर और तीन प्याले रखकर जा चुका था। रसिक ने एक प्याला अपनी ओर खिसकाते हुए कहा—'बिजली जी, आप भी कमाल करते हैं। भला सुनार से कहा जाए कि एक दराती बना दो तो क्या वह बना पाएगा और लुहार चन्द्रहार बना सकेगा क्या? जबकि दोनों ही हथौड़ा-छेनी का प्रयोग करते हैं। बस, तीर साहब उपन्यास नहीं लिख सकते और आप मुसद्दस या रुबाई नहीं कह सकते।'

'ठीक कहा रसिक साहब ने।' विवेक और चक्रपाणि न रसिक के तक का अनुमोदन किया।

'अच्छा! फिजूल की बाते छाडो। हा, तो विवेक भाई, सुनाओ अपनी कहानी।' बिजली ने वाद विवाद का अन्त कर गोष्ठी का शुभारम्भ करने की गरज से कहा। इससे पहले कि विवेक लिफाफे से कहानी निकालता तीर साहब फिर बीच म ही चहक पडे— मिया काफी के साथ कहानी पढने की बात जमती नही। अदबी निशस्त के साथ तो हलक कडवा होना चाहिए।'

'तीर साहब, आपके लिए बिना दूध चीनी की काफी मगवा देते हैं। हलक कडवा हो जाएगा।' बिजली न फिर चुटकी ली।

'अमा यार, तुम तो मजाक करन लग। हम तो विवक साहब को पटा रह थ। अगर पट जात तो एकाध पैग आप लोगो के हाथ भी लग जाता।'

'आजकल विवेक भाई कडकी मे हैं। कहानी छप जाएगी तो आप लागो का हलक अवश्य कडवा करवा देंगे। इस समय उनकी कहानी पर सिफ काफी की चुस्की लेकर दाद दीजिए।' रसिक ने विवेक के पक्ष म सफाई दी।

कहानी पढी गयी। बीच-बीच में दाद भी मिली, लेकिन कहानी समाप्त होने पर चक्रपाणि ने जो बखिया उधेडी तो विवेक को दिन मे तारे नजर आन लगे। सही बात तो यह है चक्रपाणि इसे कहानी मानने के लिए तैयार न थे। उनका कहना था कहानी टेकनीक की दृष्टि से बहुत कमजोर है। अपने विषय का प्रतिपादित नही करती। आम आदमी की जिंदगी स कहानी कही भी जुडी हुई नही है।

चक्रपाणि सफल साहित्यकार, कुशल राजनीतिज्ञ और दशन मे गहरी पैठ रखते थे। खरी अलोचना से विवेक का चेहरा लटक गया। वह नही समझता था कि चक्रपाणि सबके सामन उसकी रचना को दो कौडी की साबित कर देगा। वह मन मारकर चक्रपाणि के तक सुनता रहा। अन्त म चक्रपाणि बोला—'विवेक भाई, मेरा उद्देश्य तुम्हे कष्ट पहुचाना नही है। मैं जानता हू, तुम्हारी भाषा मे जान है। कुछेक अच्छी रचनाए भी तुमने दी हैं। लेकिम लगता है, अब तुम अपन स्तर को बनाये रखने मे सफल नही हो पा रह हो। पाठक अच्छे लेखक स अच्छी रचनाओ की अपेक्षा करता है। मुझे भी तुम्हारे से ऐसी ही आशा है। आशा है भविष्य म अच्छी रचनाए दे सकोगे।'

चक्रपाणि के चुप होने पर वातावरण बोझिल हो गया। रगीन शाम मनहूसियत मे बदल गयी। तीर, रसिक और बिजली भी बुझ-से गए। कुछ देर तक मरे का श्रद्धाजलि अर्पित करन की स्थिति बनी रही। विवेक को तो ऐसा लग रहा था, माना वह कुर्सी समेत धरती म धस रहा है।

बेयरा बिल ले आया। बिजली ने जेब स नोट निकालकर ट्रे मे डाल दिया

और चारमीनार का नया पॅकिट खोलकर बारी-बारी स विवेक तथा अन्या के सामने बढा दिया।

वे टी-हाउस स निकले तो सारा कनाट प्लस दीवाली-सा जगमगा रहा था। सडक पर मोटर कारो की दिन-जसी बेपनाह भीड रपट रही थी। रीगल के बरामदे मे ब्लैकिए टिकटों का व्यापार कर रहे थे। बहुत से सिनेमा के शौकीन टिकट-वचित रह जाने पर केवल विज्ञापन के बोर्डों पर चित्रित नायिका की सुडौल पिंडलियो और उभरे वक्ष को दखकर नयन-तृप्ति कर रहे थे।

रिवोली के चौक पर पहुचकर चक्रपाणि, तीर और रसिक ने विदा ली। उन्हे मद्रास होटल के स्टॉप से जनकपुरी की बस लेनी थी। बिजली और विवेक प्लाजा की दिशा मे बढ गये। पचकुइया रोड पार कर बिजली के पैर एकाएक रुक गये। अब तक वे लगभग चुप चल रहे थे। उसे ठिठका देख विवेक न पूछा—'अब किधर ?'

बिजली ने उसके प्रश्न को अनसुना कर कहा—'तुम्हें घर जाना है, जाओ।'

'आप ?'

'हाफ लेना है।'

'हाफ' का नाम सुनकर विवक का जी न जान कैसा कैसा होने लगा। जब से उसके और राजन के बीच खिचाव हुआ था, उसन नही पी थी। उस चुप खडा दखकर बिजली बोला—'चलेगी ?'

'जरूर।' विवेक के मुह स स्वत निकल गया। बिजली ने उसके मन की बात कह दी थी।

'आओ।'

'नाइट किंग' का हाफ लेकर वे सेन्ट्रल पार्क की ओर चले गए। पार्क म घूमते एक दालवाले से नमकीन दाल ली और एक रौंस की ओट मे बैठकर सीधे अद्धे को मुह से लगाकर पीना शुरू कर दिया। बिजली पूरा पियक्कड था, किन्तु विवेक दो-तीन घूट हलक स उतारत ही हवा म उडन लगा। उसन दिन मे मातण्ड जी से हुई बातचीत ज्यो-की-त्यो बिजली के सामने उगल दी। बिजली उसकी समस्या पर गभीरता स सोचकर बोला—'विवक, मेरी मानो तो यह साहित्य-वाहित्य का चक्कर छोडो। पैसा कमाओ और मौज करो। हफ्तो सिर खपाकर एक कहानी लिखत हो। महीनो-सालो मेहनत कर एक पाडुलिपि तयार करत हो और मिलता क्या है ? कहानी की पचास रुपल्ली। उपन्यास के लिए प्रकाशको के दरवाजा की ठोकर। कौन पूछता है कि आप कितने बडे लेखक हैं। हमारी तरह चटपटेदार उपन्यास लिखो और धन कमाओ। बिजली की तरह शोहरत मिलेगी। लडकिया तुम्हारे उपन्यास पढकर तुम्हारे नाम पर आह भरेंगी। लडके तुम्हारे नाम के शदा

होंगे, मेरे उपन्यास 'दिलदार यार' की तरह किसी फिल्म निर्माता की निगाह तुम्हारे किसी उपन्यास पर पड गयी तो पौ बारह। कार कोठी वाले हो जाओगे। मैं भी दिलदार यार का पैसा मिलते ही सबसे पहले कोठी और कार का प्रबध करूगा।'

विवेक की आखो के सामने हरा ही हरा तैरने लगा। कोठी-कार तो क्या उसने किराये के अच्छे फ्लैट की कल्पना भी नही की थी। कितना कमा पा रहा था वह! राजन ने अपने पडोस मे उसे जो कमरा दिलाया था, उसे बिलकुल पसद न था। कहने को वह कोठी का कमरा था—पूरे डेढ सौ में, पर था कबूतरो का काबक। न दिन की रोशनी ठीक से अदर तक पहुच पाती थी और न हवा ही। वह चालू उपन्यास लिखेगा तो उसे वह सब सुख-सुविधाए मिल जाएगी। वह एक क्षण अपने भविष्य की कल्पना कर रोमाच से भर गया। उसका रोम-रोम गीत गाने लगा। पर अगले क्षण ही वह बुझ सा गया। क्या वह घटिया साहित्य लिख सकेगा? वह उदासी भरे स्वर मे बोला—'बिजली साहब! क्या मैं ऐसा कर पाऊगा, मुझे सदेह हो रहा है।'

सदेह! क्यो?'

'रोज नयी नयी थाम कहा से लाऊगा?'

मैं बताता हू। थीमो की कोई खेती नही होती और न ही आसमान से झडती है। पटरियो पर ढेरा अग्रेजी नावल रद्दी मे बिक्ते हैं। दो-चार पढो और बस एक नावल तैयार, समझ?' बिजली न गुरुमत्र दिया।

'मगर यह तो चोरी है।'

'चोरी! क्या बात करत हो? चोरी वह होती है, जो पकडी जाए।'

'किसी-न किसी दिन तो पकडी जाएगी ही।'

'बिलकुल नही। अग्रेजी के नावल पढने वाले हिन्दी के नावल कितने पढत हैं, मुश्किल से दो-तीन प्रतिशत। फिर यह जरूरी नही कि तुम ज्यो की-त्यो नकल मारो। नकल म थोडी सी अकल लगाओ। नामो का हिन्दीकरण करो। घटनाओ को थोडा तोडो मरोडो।'

'ठीक है।' विवेक के विवेक मे उसकी बात घुस गयी। थोडी देर सोचने के बाद उसने बिजली की बात स्वीकार कर ली।

'अब रही मातण्ड वाली बात। सो टके टके की लौडिया सडको पर बिखरी पडी हैं। रोज नयी पकडो। रोज एक नयी कहानी तैयार। सिर्फ गाठ म पैसा और हौसला होना चाहिए।

विवक को दारू चढ अवश्य गयी थी लेकिन मस्तिष्क बराबर काम कर रहा था। वह अन्दर तक काप गया। उसके आयसमाजी सस्कार उसे झकझोरन लग। उसके पिता हरचरणसिंह कट्टर आयसमाजी थे और उन्होन सदा उस आदश की

घुट्टी पिलाई थी। 'मातवत् परदारेषु' का उज्ज्वल सिद्धात उसके मस्तिष्क म बार-बार कौंधन लगा। पिताजी के घोट मुड़े सिर पर मोटी चोटी और गल म यज्ञोपवीत धारण किए पुष्ट शरीर के दर्शन होन लगे। वह सामन खड मुस्करा रह थे—'विवेक मगतष्णा म फस गया, बेटे ! मृगतृष्णा मे फस मृग की मृत्यु निश्चित है, तरी भी। न सही दहिक मृत्यु, आत्मा स तो मर ही जाएगा।'

विवेक को याद आया वह बी० ए० मे पढता था। उसकी एक क्लासमेट थी प्रवीण। नाजुक-सी लडकी, सगमरमरी। बिलकुल छुईमुई। उस बडी भली लगती थी वह। प्रवीण उसकी कविता-कहानियो की मुक्त-कठ प्रशसिका थी। विवक का स्वर सुरीला था। जब वह साहित्यिक आयोजनों म सस्वर कविता-पाठ करता ता वह रस बावरी हो जाती। शनै शनै विवक और प्रवीण की घनिष्ठता बढन लगी। वह कई बार उसक साथ उसके घर आई थी। मा बच्चो का मेल समझकर अनदेखा कर जाती थी, किन्तु जब हरवेश सिह को उनकी मित्रता का पता चला ता बहुत चिंतित हुए। उनकी अनुभवी दृष्टि म यह विवक की चरित्रहीनता थी। एक दिन वह बिना किसी भूमिका क सपाट बोले— विवेक, प्रवीण स तुम्हारे कस सबध हैं ?'

इस सीधे प्रश्न से विवेक हक्का बक्का रह गया। क्या उत्तर दे ? उसकी पलक झुक गयी और चेहरा कदूरी हो गया। हरवेशसिह न उसे उत्तर न देता देख आग कहा — बट जवानी अधी होती है। भले-बुरे की पहचान करना मुश्किल हा जाता है। मैं इस गहराई म कतई नही जाता कि प्रवीण से तुम्हारे सबध कैसे हैं या प्रवीण कसी लडकी है। बस, इतना जान लो कि तुम्हारी जरा-सी भूल उसका जीवन चौपट कर सकती है। वैसे विद्यार्थी को सिवा विद्याध्ययन के स्त्री की कल्पना नही करनी चाहिए। तुम उसका साथ छोड दो। वर्ना तुम्हारा चारित्रिक पतन हो जाएगा। जानत हो चरित्रहीन मनुष्य पशु के समान होता है।

खैर ! जो भी हो। विवेक ने एक आज्ञाकारी पुत्र की तरह पिताजी का उपदश शिरोधाय कर लिया था। उसन प्रवीण का साथ छोड दिया था। परिणामत वह लडकियो क बारे में इतना उदासीन और झेंपू हो गया था कि आज भी बिजली की पत्नी गमन की बात सुनकर वह घबरा गया था। उसन दबे स्वर म कहा— 'गर औरत स तो मैं बात भी नही कर सकूगा, बिजली साहब !

'यह बात है ! और बिजली साहब हो-हो कर हस पडे— तुम्हारी झेंप भा खत्म करनी पडेगी। ल, एक पग गल स और उतार। शराब पीकर आदमी बोल्ड हो जाता है।

उसने अद्धा विवक के हाथ मे थमा दिया।

बिजली ता बिजली था ही। उसे वही बैठा छोडकर वह कुछ देर क लिए अदृश्य हो गया। लौटा तो साथ म एक आधुनिक सभ्यता का नमूना युवती उसक

साथ थी। विवेक पसीना-पसीना हो गया। युवती उन दोनों के बीच इस अंदाज में बैठी कि उसका स्पर्श विवेक से हो जाए। उसकी वेतकल्लुफी पर विवेक सोचता रह गया। उसका जिस्म लड़की से छूता तो रोमांच हो आता। लेकिन लड़की का व्यवहार ऐसा था, मानो पूर्व परिचिता हो। अद्धे में अभी दो घूंट और पड़ी थी। बिजली ने लड़की के हाथ में अद्धा थमा दिया और वह बिना मुंह बिदकाए हलक में उतार गयी। वह प्रगल्भ हो बोली, 'बिजली साहब, बस इत्ती-सी! इत्ती से क्या होता है। न हिंदू रही, न मुसलमान। ईमान भी गया और विसाले सनम भी न मिला।'

'डोन्ट वरी मिस, सनम भी मिलेगा और शराब भी।' कहकर बिजली ने विवेक को संबोधित किया—'आओ चलें। आज की रात तुम्हारे नाम सही।'

उस दिन के बाद से विवेक की झिझक दूर हो गयी। उसे शराब और शबाब की वितृष्णा रहने लगी। सांझ होते ही वह बिजली से मिलने निकल पड़ता। फिर दोनों मिल किसी बार में डटकर पीते। इसके बाद 'माल' की तलाश होती। उसे अब रोज नयी लड़की की दरकार थी। बिजली के संपर्क में आई लड़कियां उसके लिए बासी हो चुकी थीं, बेमजा। उसका कहना था, जब घर की रसोई छोड़कर होटल में खाने पहुंच गए तो रोज-रोज दाल खाने की क्या तुक। नयी नयी डिश लो, नये नये जायके। जैसे वह नित्य अंग्रेजी से उपन्यासों की कहानी काट छांटकर नयी कहानी गढ़ता था, ऐसे ही मौलिक कहानी गठन के लिए नये चेहरों की आवश्यकता होती। जो उसकी उद्दाम वासना की पूर्ति भी करते और किसी कहानी का प्लाट भी दे जाते। यदि गांठ में पैसे कम हुए तो वे किसी गंदी बस्ती में पहुंच जाते और देसी ठर्रे और सस्ती औरत से काम चला लेते।

विवेक अब इस खुराफात का इतना आदी हो चुका था कि यदि बिजली साहब से किसी कारणवश मुलाकात न हो पाती तो स्वयं ही खुली सड़कों पर पैरों को अपनी मुहार छोड़ देता। रात में देर तक भटकता रहता। चिड़िया न फंसती तो किसी नाचने वाली की सीढ़ियां चढ़ जाता। जेब में पैसे न होने पर वहां उसकी कई बार हड्डी-पसलियां भी टूटीं। घिनौनी गालियों का वचनामृत भी मिला। लेकिन उसका वही हाल था कि 'लागि लगन छूटे नहीं जीभ चोंच जरि जाए।'

यह बात सही थी कि सस्ता और कामोत्तेजक लिखने से उसे खासी आमदनी हो रही थी। लेकिन आदत इस हद तक खराब हो चुकी थी कि कमाया न कमाया बराबर था। उसकी जेब में छोटा नहीं, बड़ा सुराख था। नोट आया और गायब। वह 'जी मन पॉकेट बुक्स' से कई-कई पांडुलिपियों का एडवांस पैसा ले चुका होता था। यार-दोस्तों का भी काफी कर्ज उसके सिर चढ़ा रहता था। राजन ने उसे अपने साथ वाली कोठी में फ्लैट दिलवाया था। किराये के लिए फ्लैट का मालिक दो

तीन महीने तक लगातार राजन को रास्ता चलते घेरता और राजन जब-तब विवेक को बुरा भला कहता, तब कहीं जाकर यह किराया चुकाता। घर का वातावरण भी दिनों दिन बोझिल होता गया। कल्पना उनकी चाहियाती का सहन करते करते तंग आ गयी थी। पहले पहल बड़ी-बड़ी बातों पर ही कहा-सुनी होती थी, लेकिन अब तो हर छोटी बात पर तू-तू मैं मैं होने लगी थी। फिर भी कल्पना एक समझदार नारी की तरह एसी स्थितियों को बचाने का भरसक प्रयत्न करती। घर का खर्च बढ़ता जा रहा था। एक के बाद एक घर में तीन बच्चे आ-चुके थे। विमल चार वर्ष का अलका दो की हो चुकी थी और बबलू छह महीने पहले ही उनकी गोद में आया था।

विवेक ने तो मानो गृहस्थी की जिम्मेदारियों से आंख बन्द कर ली थीं। वह उतना ही स्वच्छन्द जीवन जीने में मस्त था। कल्पना सारी सारी रात दरवाजे पर आंख गड़ाए उनकी प्रतीक्षा करती। जब वह घर लौटता तो रात आधी से अधिक बीत चुकी होती। उसके पैर लड़खड़ाते होते। मुंह से दारू की दुर्गन्ध उड़ती होती। कपड़े और बाल अस्त व्यस्त होते। कल्पना कसमसाकर रह जाती। उसे सहारा देकर अंदर ले जाती। कहती कुछ नहीं। कहती भी क्या? कहते-कहते कहानी इतनी बेमजा हो चुकी थी कि कुछ कहकर केवल जग-हंसाई करानी थी।

इस बीच एक अकल्पनीय घटना ने कल्पना को झकझोर दिया। एक दिन वह अपने दो नन्हे बच्चों सहित किसी सहेली के यहां गयी थी। विमल नर्सरी स्कूल में पढ़ने गया हुआ था। वह घर लौटी तो आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। विवेक और दीप्ति मादरजाद ड्राइंगरूम में लिपटे पड़े थे। कल्पना ने फ्लैट में कब प्रवेश किया और वह कब ड्राइंगरूम के उड़के किवाड़ों के पास पहुंच गयी, वे दोनों जान न सके। कल्पना दरवाजे पर पत्थर हो गयी। उसके पैर इतने भारी हो गये कि आगे-पीछे उठ न पा रहे थे।

स्वच्छन्दता का जीवन शुरू करते ही विवेक दीप्ति पर आसक्ति की दृष्टि रखने लगा था। किन्तु उसने कभी दीप्ति के सामने अपने भाव प्रकट न होने दिए थे। सोचता, राजन ने मुझे हमेशा बड़े भाई का मान दिया है। यदि मैं पतन की इस सीमा तक पहुंचता हूं तो उसके साथ विश्वासघात होगा। लेकिन स्त्री पुरुष के मनोभाव पढ़ने में शायद ज्यादा चतुर होती है। दीप्ति समझने लगी थी कि विवेक उससे क्या चाहता है। फिर भी उसने विवेक को कभी लिफ्ट नहीं दी। वह एक मात्र राजन की थी और उसी की होकर रहना चाहती थी। लेकिन यह स्थिति अधिक दिनों तक बनी न रह सकी। जब कल्पना ने विमल को जन्म दिया तो वह बेहद प्रसन्न हुई थी। मानो स्वयं उसने बच्चा जना हो। कई दिनों तक बच्चे का जन्मोत्सव धूमधाम से मनाया। उसने खूब मंगलाचार कराए। विमल कुछ ही दिनों में दीप्ति के लिए अनिवार्य खिलौना हो गया। कल्पना तो सिर्फ छाती का

दूध पिलाती। शेष लालन-पालन का दायित्व दीप्ति ने अपने ऊपर ले लिया था वह नहलाने धुलाने से लेकर विमल का गू मूत तक करती। उसे छाती से चिपटाए घर का सारा काम करती।

फिर आई अलका। सारा कुछ बदल गया। दीप्ति का प्यार ईर्ष्या म बदल गया। उसे लगता, मानो कल्पना हर दूसरे वप बच्चे पैदा कर उसका मुह चिढ़ा रही हो—'देख री ! मैं कितनी सौभाग्यवती हू। कैसे-कैसे सुन्दर फूल मेरी कोख मे उपज रहे हैं।'

दीप्ति अपने को कोखहारी महसूस करने लगी थी। काश ! वह भी एक बच्चे की मा बन पाती। कल्पना और वह समवयस्क ही तो हैं। दोनो का विवाह भी कुल छह महीने के आगे पीछे हुआ है। कल्पना दो दो बच्चो की मा बन गयी और वह चदरी चुहिया की मा भी नहीं बन सकी।

बस, राजन और उसका मेडिकल चेकअप हुआ। दीप्ति ठीक और राजन बिना पुकेसर का फूल। उसके वीय म शुक्राणु नही थे। दीप्ति सिर धुनकर रह गयी। वह सारी उम्र राजन का अभिशाप ढोती रहेगी। निपूती नि सतान। राजन भी स्वय को अपराधी-सा महसूस करता। सोचता, मेरी खामी का खमियाजा दीप्ति क्यो भुगते ? क्यो न उसे आजाद कर दिया जाए और एक दिन हमी हसी में उसने अपने विचार दीप्ति के सामने प्रकट कर दिए—'दीपू अभी कुछ नही बिगडा। तुम स्वस्थ, सुदर और जवान हो। यदि तुम चाहो तो तलाक लेकर दूसरा विवाह कर सकती हो। मुझे कोई आपत्ति नही होगी।'

कहने को तो वह कह गया, पर उसे लगा, मानो वह कोई घोर अपराध कर रहा हो। उसकी आखें धरती म गडी रह गयी। दीप्ति भी सकते में रह गयी। उसे आशा न थी कि राजन इतनी कठोर बात इतनी आसानी स कह देगा और उसके सुख के लिए इतना बडा बलिदान करने को तैयार हो सकता है। वह काफी देर तक गभीर मुद्रा म बैठी रही। डूबती तैरती रही कही दूर भविष्य की असीम गहराई म। उसने धीरे धीरे बोलना शुरू किया—'राज, यह तुम क्या कह रहे हो ? मैं तो कभी ऐसा सोच भी नही सकती।'

'नहीं, दीपू ! तुम्हें सोचना ही होगा। मैं तुम्हारा मातत्व का अधिकार समाप्त करना नहीं चाहता। मैं सकीणतावादी थोथी मान मर्यादा का दास नहीं हू। अपने स्वाथ के लिए तुम्हारी मधुर आकाक्षाओ को नष्ट करना पाप समझता हू।' राजन भी गभीरता से कह रहा था।

'राज, आज विज्ञान ने बहुत उन्नति कर ली है। सुना है, अब टेस्ट-ट्यूबों में मनपसद बच्चे मिला करेंगे।' दीप्ति ने विषय का नया मोड दिया।

'हां, पशुओ म कृत्रिम गर्भाधान तो हमारे देश म ही खूब हो रहा है।'

'तो फिर इस समस्या को हम गभीरता से क्यों नहीं लेना चाहिए। इसका समाधान

हो सकता है । केवल तुम्हे अपने को परिस्थितियों के अनुरूप ढालना होगा । बोलो, ढाल सकोगे ?'

'मैं समझा नही ।'

'साधारण सी बात है । यदि हम बच्चे के लिए कोई उपाय ढूढने मे सफल हो जाए तो क्या तुम उस बच्चे का बाप बनना स्वीकार करने म समथ हो सकोगे ?'

'दीप्ति ऽ ऽऽ !' राजन लगभग चीख-सा गया ।

'राजन ! होश नही खात । मैंने कोई खराब बात नही कही । मैंन बिना लाठी टूट साप मारने की बात कही है । तुम चाहते हो कि साप भी न मरे और लाठी भी टूट जाए तो तुम जानो । आखिर टस्ट-टयूबो मे पदा होन वाले बच्चों को भी तो स्वीकारा जाएगा ।' दीप्ति बिलकुल उत्तेजित नहीं हुई । वह धीमे स्वर म बोलती गयी—'राज, तुम विवाह को सामाजिक समझौता मानते हो । यदि हम इस समझौते को पक्का और स्थायी बनाने के लिए बच्चे वाली शत पर एकमत हो जाए तो सारा सकट समाप्त हो जाएगा । तुमने अभी तलाक की बात कही थी ? सोचो, क्यो लें हम तलाक ? जब उससे बचने का रास्ता खोजा जा सकता है । बीज खराब हो तो क्या हम खेत के लिए अच्छे बीज की व्यवस्था नही करते ?'

दीप्ति इस समय पूणतया गभीर थी और तक पर तर्क दिए जा रही थी—'राज शायद तुम डर रहे हो कि बीज का मालिक खेत का मालिक न बन जाए। खेत का मालिक खेत को गिरवी रखकर अथवा बेचकर बीज लेकर क्या करेगा ? वह तो बीज के दाम चुकाकर खेत को बोना चाहेगा । इसमे डरने की क्या बात है । मैं तुम्हे बेहद प्यार करती हू । मुझे तुम्हारे प्यार पर अटूट विश्वास हू । तुम मुझ पर भरोसा करो राजन ! सब ठीक हो जाएगा । हम खेत की कीमत पर बीज कतई नही लेना ।'

राजन सिर थामे बैठा रहा । वह कुछ समझ न पा रहा था । दीप्ति के तर्कों के सामने स्वय को परास्त महसूस कर रहा था । वह जानता था, दीप्ति विलक्षण बुद्धि की असाधारण औरत है । वह जो कहती है, सोच-समझकर कहती ह । लेकिन मन का चोर उसे आश्वस्त होने से बरज रहा था । वह बोला—'दीपू, इस समय मैं कुछ भी सोचने म मजबूर हू । मुझे अकेला छोड दो । मुझे सोचने दो, समझने दो ।'

उस दिन के बाद विवेक और कल्पना एक छत के नीचे रहते हुए भी एक-दूसरे स दूर हो गए थे बहुत दूर । विवेक ने अपने किए के लिए कल्पना से क्षमा माग ली थी—भले ही ऊपरी मन से और कल्पना ने उसे क्षमा कर भी दिया था—भले ही वह दिखावा मात्र था । उनके मनो मे गाठ पड चुकी थी । एक ऐसी गाठ, जिसके खुलने की सभावना नहीं थी ।

जिस दीप्ति को कल्पना ने सदा बहन माना था, वही उसके अधिकार का हरण करेगी, उसने कभी नहीं सोचा था। लेकिन दीप्ति को कोई पश्चाताप नहीं था। वह अपने मनोरथ में सफल हो गयी थी। इसके आभार मितली-उलटियों तथा शरीर के सुस्त रहने से सुस्पष्ट होने लगे थे। वह खुश थी, बहुत खुश। वह उमंग में भरकर अपने फूलते पेट को सहलाती। वह मां बनेगी। एक कोमल गुदगुदे रुई के गाले जैसे बच्चे की मां। 'मां' शब्द उसे गुदगुदाता और एकांत में बार-बार मां उच्चार कर वह मन-ही मन आनन्दित होती। मां के माधुर्य में सराबोर हो जाती। लगता, गर्भ-स्थित बच्चा उसे मां मां कहकर पुकार रहा है। वह अभिभूत हुई अपने गुदगुदे बिस्तर में जा दुबकती और घंटों आनन्द लेती रहती।

उसे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी। राजन की भी नहीं। उसने राजन को स्थिति-अनुकूल ढाल लिया था। राजन ने आश्वस्त हो दीप्ति और विवेक के बच्चे का बाप होना स्वीकार कर लिया था। गृहस्थी में सुख चैन रखने के लिए यह उसके लिए अनिवार्य भी था।

किंतु विवेक अपना रहा-सहा विवेक खो चुका था। उसके मन में यह बात घर कर गयी थी कि कल्पना से उसकी अब नहीं निभेगी। वह दीप्ति और उसके बीच हमेशा दीवार का काम करेगी। कल्पना का प्यार बच्चों में बंट चुका है। उसके समर्पण में अब वह गरमी नहीं, जिसकी अनुभूति उसने दीप्ति के साहचर्य में की थी। उसे अब कल्पना नहीं, दीप्ति दरकार थी। उसका खुराफाती दिमाग हमेशा इसी उलझन में उलझा रहता कि दीप्ति को कैसे चंगुल में फांसकर रखा जाए। कल्पना का उस दिन वाला सिंहनी रूप उसे आपाद मस्तक कंपित कर जाता। कल्पना ने दीप्ति का मुंह नोचकर लहू-लुहान कर दिया था। उसके कपड़ों को आंगन में रखकर आग लगा दी थी और चिल्लाकर सारा फ्लैट सिर पर उठा लिया था—'कलमुंही तुझे नंगी ही तेरे घर भेजूंगी। मुहल्ले में तेरा जुलूस निकालूंगी। ऐसी आग लगी है तेरे, जा दो-दो खसम चाहिए।'

और सचमुच ही उसे धकियाती हुई वह दरवाजे तक ले गयी थी। यदि वह दौड़कर रोक न लेता तो निश्चय ही कल्पना किवाड़ खोलकर दीप्ति को गली में धकेल देती। फिर होती सारे मुहल्ले में फजीहत। उसने कल्पना के दोनों हाथ पकड़कर मिन्नत की थी—'कल्प, मुझे माफ कर दो। हमसे भयंकर गलती हो गयी है। क्षमा अनर्थ न करो। मुझे चाहे जो सजा दो पर उस गरीब को कुछ न कहो।'

'गरीब। कल्पना शेरनी की तरह बिफरी और हुंकारी—यह बदजात गरीब है। दूसरों का घर बिगाड़ने वाली गरीब। इस बदकारी का मजा चखाकर ही रहूंगी।'

कल्पना ने तड़ातड़ तीन चार तमाचे दीप्ति के चिकने चुपड़े फूले गालों पर

रसीद कर दिए। विवेक गिडगिडाया—'कल्पना, स्त्री होकर स्त्री का अपमान न करो।'

'और यह स्त्री होकर दूसरी के मद को छीन ले जाए।' उसके स्वर म ढेर-सारा विद्रूप था।

'नही कल्प, मैं तुम्हारा था और तुम्हारा हू।' विवेक मिमियाया।

'हू।' कल्पना ने लबा हुकारा भरा—'तुम मेरे होते तो यह सब न होता। कभी मेरे थे, पर अब नहीं। तुमने मुझे बच्चे बनाने की मशीन भर समझ लिया है। अब तुम्हें चाहिए रोज नया रोमास। बाहर क्या गुल खिलाते फिरते हो, मुझे पता नही लगता। पर जिस दशा मे घर आते हो, उससे सहज अनुमान लगाया जा सकता है। मैं अब तक यह सब पुरुष का अधिकार मानकर सहती रही, लेकिन आगे बिलकुल बर्दाश्त नही करूगी। अब इस घर मे तभी रहूगी, जब तुम स्वय को सुधारोग। यहा रडीखाना बिलकुल नहीं चलने दूगी।'

'जैसा तुम कहोगी वैसा ही होगा, कल्प' मैं भटक गया था। मैं अपनी गलतियो का सुधारूगा।' विवेक ने घुटो टेक दिए थे। लेकिन उसके मुह से निकलते शब्द कही दूर से आते से लग रहे थे। कहने का ढग बिलकुल सपाट था और उसके स्वर म पश्चाताप भी कतई झलक नही थी। वह इस समय मामले का तूल देना नही चाहता था। वह किसी कीमत पर भी दीप्ति को सुरक्षित निकाल दना चाहता था। उसकी चिकनी चपडी बातो स कल्पना का क्रोध कुछ शात हो गया। वह दीप्ति को धकियाती अपा मेकअप रूम मे ले गयी और आदेश-सा देती हुई बाली—'अपना ही सोना खोटा हो तो परखने वाले का क्या दोष। बेशम, मेरे कपडे पहन और यहा से दफा हो जा। याद रख, फिर कभी ऐसा-वैसा मेरे कानों मे पडा तो कच्ची ही चबा जाऊगी।'

दीप्ति कपडे पहनकर अपन फ्लैट मे चली गयी। इस सारे काड पर उस जरा भी ग्लानि अथवा क्षोभ न था। वह मन-ही-मन सतुष्ट थी कि कुछ पाने के लिए कुछ खोना भी पडता है। जो उसने पाया है, खोने की तुलना उसस नगण्य है। कल्पना की जगह यदि वह स्वय होती तो शायद यही सब करती। हो सकता है इससे भी ज्यादा। धीरे धीरे वह कल्पना को मना लेगी। वह मन की बडी साफ है। उसस प्रार्थना करेगी तो वह इस काड का भूल जाएगी।

नि सदेह दीप्ति अपनी चाल म सफल रही। उसने कल्पना से फिर म बहनापा बढाना शुरू किया। पिछली बातो को एसा ठेल दिया मानो कभी कुछ हुआ ही नही। लेकिन विवक अब भी विवेकहीन ही रहा। अवसर मिलता ता वह दीप्ति को ऐसा ताकता, मानो निगल ही जाएगा। मगर दीप्ति चीन्ह कर भी अनचीन्हा कर देती। उसने जब-तब उस हतोत्साहित ही किया— विवेक, शुभ प्रयोजन के लिए किए गए पाप को मैं पाप नही मानती। मास खाकर गले मे हड्डी लटकाने

वालो मे स मैं नही।'

विवेक बेवकूफो की तरह उसके कथन से अथ-गाभीय लेने म मदा असफल रहा और यही समझता रहा कि दीप्ति कल्पना क डर से ऐसा कहती ह। यदि कल्पना का डर उसके मन मे निकाल दिया जाए तो नि सदह वह उमकी अक्शायनी बनी रह सक्ती है। वह घटों घटो एकात म बैठा यही सोचता रहता। उसके सामने केवल एक ही लक्ष्य था कि कल्पना को कैसे रास्त से हटाया जाए और दीप्ति को कैसे पाया जाए।

कल्पना न इस घटना से पहले कई बार काशी भ्रमण की इच्छा प्रकट की थी। विवक ने उसकी इस अभिलाषा का लाभ उठाया और एक दिन बाला—'कल्प, मुझे काशी जी की पृष्ठभूमि पर आधारित एक उपन्यास लिखना है। मैं काशी जा रहा हू। चाहो ता तुम भी चल सकती हो। महीन भर वही रहेग घूमेगे। वहा के लोगो के बीच रहेग तो खूब आनन्द रहेगा।'

'जाना तो चाहती हू, पर बच्चो के साथ घूमन म दिक्कत ही होगी।' उछाह म भर कर कल्पना ने कहा।

'हम बच्चो को दीप्ति आटी के पास छाड सकते हैं। वे उसस काफी हिले मिले भी हैं।' विवेक ने समस्या का निदान खोज लिया।

ठीक है।' काशी घूमने की प्रसन्नता म कल्पना न उसका सुझाव मान लिया और दा दिन बाद बच्चो को दीप्ति का सौंपकर वे काशी प्रवास के लिए चल दिए।

कल्पना नही जानती थी कि यह उसके जीवन की पहली और अतिम यात्रा है, जिस उसने अपनी मर्जी से स्वीकारा है। वह उल्लसित मन विवेक के साथ काशी जी गयी, मगर लौटी नही। लौटा सिफ विवेक—अकेला। कल्पना काशी मे समा गयी थी। कहा ? कोई नही जानता। काई कहता है कि अमावस्या के रोज नौका नयन करते समय वह शीतल गगाजल से खिलवाड करती हुई बीच धारा म गिर गयी और प्रयास करने पर भी बचाई नही जा सकी। कुछेक लोगो का कहना है कि स्नान करत समय घडियाल न उसे गटक लिया है और कुछेक का कहना ह कि उसका अपहरण हुआ है। यह सब विवेक की अलग अलग लोगो से अलग-अलग बातचीत करने पर कहा-सुना जा रहा है। मगर बिजली साहब का कुछ और ही कहना है। उनका मत है कि विवेक ने जानबूझकर कल्पना को गगा म समाधि दी ह, ताकि वह दीप्ति स उन्मुक्त यौन सम्बन्ध बनाए रख सके। बहरहाल, सत्य क्या है, कोई नही जानता—सिवाय विवेक के।

दस-पद्रह दिनो तक विवेक मातम की चादर आढे पडा रहा। बहुधा वह गुम-सुम बठा रहता। माना कल्पना उसकी जीभ अपने साथ ले गयी हो। दीप्ति उसके गम और कल्पना की मृत्यु से अत्यधिक दुखी थी। वह हर समय उसके इर्दगिर्द बनी

रहती। सोचती इस विकट समय म उसे सहानुभूति की अत्यत आवश्यकता है। लेकिन राजन बिलकुल उदासीन था। वह न दीप्ति को विवेक के फ्लट मे जान स रोकता था और न ही जाने के लिए उत्साहित करता। बस, उसने एक दिन सिर्फ इतना ही कहा — दापू, कही बीज की एवज मे खेत न खो बैठू।'

नकद दाम चुकाकर बीज लिया है, राज ! खेत खोन का सवाल ही नही उठता।' बेबाक हसी हसती हुई दीप्ति प्यार मे उसके गले मे झूल गयी और बोली—दुकानदार लुट गया है। उसके प्रति हमदर्दी बरतना इसानियत का तकाजा है।'

और उसन उचककर लिपस्टिक से सने होंठों के निशान उसके गालो पर छाप दिए और शरारत स फुदककर दरवाजे की ओर बढ़ती हुई बोली—'राज, शीशा देखो। केनवास पर मॉडर्न आर्ट पेंट हो गया है।'

धीरे-धीरे विवेक नामल हो रहा था। एकात की मारक स्थिति मे बचने के लिए उसने एक दो अच्छी कहानिया भी लिखी। लेकिन एक लबे समय तक साहित्यिक क्षेत्र से अलग रहने के कारण उसकी ख्याति इतनी क्षीण हो चुकी थी कि कहानियो के छपने म उसे स्वय सदेह हो रहा था। उसका नाम सस्त लेखको की श्रेणी म जुड गया था। एक दिन वह कल्याणी के दफ्तर मे रचना लेकर गया तो मातण्डजी न स्वागत करते हुए कहा— आइए, विवेकजी ! बहुत दिनों बाद दिखाई दिए। कुछ दुबला गए हो।'

हा, कुछ दिनो से अस्वस्थ चल रहा हू।' विवेक ने धीमे स्वर म उत्तर दिया।

'आजकल क्या लिख रहे हो ? अब तो भाई रोमास क बादशाह माने जाने लगे हो। मेरी बात मानो तो कोई बादशाह की 'हीर' जैसी कोई रचना रच डालो। अमर हो जाओगे।' मातण्डजी के स्वर मे व्यग्य की पुट थी।

विवेक तो मानो धरती म धस गया। उसे मातण्ड पर बहुत क्रोध आया। मन ही-मन एक मोटी-सी गाली दी। उस रोमास का बादशाह बनान की जिम्मेदारी मातण्ड पर भी उतनी है जितनी स्वय पर। किंतु कुछ कह न सका। अभी वह झगडने की स्थिति मे नही था। कल्पना की मृत्यु न उसका मनोबल काफी हद तक कमजोर बना दिया था। उसका अपराधी मन उसे क्षमा नही कर पा रहा था।

मातण्डजी की व्यग्यात्मक टिप्पणी से वह आहत हो गया। वह कहानी दिखाने का साहस नही कर सका। उसे वहा बैठना दुश्वार हो गया। वह उठने की कोशिश म था, लेकिन उसे लग रहा था, मानो कुर्सी से चिपक गया है। मातण्ड जी मेज पर फैले कागजो मे उलझ गए। कुछ क्षणो की चुप्पी के बाद वह बोला— 'आज्ञा है चलू !'

'अच्छा कोई विशेष बात ?' मातण्ड जी न गदन नीची किए पूछा।

'कहानी दिखाना चाहता था।' उसने खड़ा होते हुए साहस कर ही दिया।

'जैसा आप लिख रहे हैं, हम छापने मे असमर्थ है।' मार्तण्ड जी ने कलमदान पर कलम रखकर कुर्सी के ढासने से कमर टिकाते हुए दो टूक जवाब दिया।

इतना अपमान ! जल भुनकर कबाब हो गया विवेक। उसका चेहरा तमतमा गया। हाथ की मुट्ठियां बध गयी। पर कुछ कह नही सकता था। वह सुलगता हुआ दफ्तर स बाहर हो गया। उसे पक्का विश्वास हो गया था कि खोई प्रतिष्ठा पुन पाना बहुत कठिन है। लोगो के मन मे उसके प्रति जो 'चीप राइटर' की धारणा बन चुकी है उस तोडना आसान नही। साहित्यिक जगत म प्रवेश पाना आसान हो सकता है लेकिन खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करना टढी खीर है। शायद अब उसका नाता साहित्यिको से जुड भी नही पाएगा। उसने तय किया कि वह साहित्य के चक्कर म नही फसेगा। केवल जानमन पॉकेट बुक्स के लिए ही सस्ते नावल लिखेगा।

उसे टी-हाउस गये काफी समय हो गया था। कल्याणी के दफ्तर से निकलकर वह सीधा टी हाउस की ओर चल दिया। अभी वह कुछ ही दूर पहुचा था कि रास्त मे कधे पर थैला लटकाए चक्रपाणि मिल गए। दोनो बडी गमजोशी से मिले। चक्रपाणि न शिकायत की—'विवेक तुमने तो इधर आना ही छोड दिया है।'

'काम मे फसा रहता हू। बहुत काम किया है। थोडी फुसत मिली तो आज इधर चला आया हू।' विवेक ने सफाई देते हुए कहा।

'बहुत काम किया है। इसे तुम काम कहत हो ? मैंने तुम्हारे काम के नमून देखे हैं—'रात भर जलती रही', 'बूढा आशिक', 'कातिल जवानी', 'हसीन रातें' और भी न जाने क्या-क्या ! इसी काम के लिए पैदा हुए हो ? समाज को भ्रष्ट करने के लिए ? राष्ट्र के भावी निर्माताओ का पतन के गत म धकेलने क लिए ? विवेक, तुम एक अच्छे लेखक एव कवि थे। समाज को अपनी कलम स बहुत कुछ द सकते थे। पर क्या दिया ? कोढ, टी० बी० और नपुसकता, जिससे सारा समाज रोगी हो जाए ? राष्ट्र की बधिया बैठ जाए ? तुम जैसा विवेकशील सामर्थ्यवान व्यक्ति ऐस घिनौने कीचड म समाज और राष्ट्र को फसाए तो कैस माफ किया जा सकता है। सच, यदि कभी व्यवस्था बदली तो तुम्हारे जैसे लोगो के लिए एक ही स्थान होगा, वह है जेल। ऐसे लोगो के प्रति बिलकुल भी नरम रुख नही अपनाया जाना चाहिए। सख्त से-सख्त सजाए मिलनी चाहिए। तब तुम लोग अपने किए पर पछताओगे।' चक्रपाणि धारा प्रवाह बोले जा रहे थे— विवेक मेरी मानो तो यह गलीज रास्ता छोड दो। माना कि तुम अच्छे पैसे कमा लेत हो, पर पैसा कमाना ही तो इसान का धर्म नही। इसके लिए ही तो उसका जन्म नही होता ? पैसा तो वेश्या चोर-बाजारिए, काला धधा करने वाले—सभी कमाते है।

शायद तुम्हारे कागज काले करने से भी ज्यादा। लेकिन समाज और राष्ट्र के लिए उनकी उपयोगिता क्या है ? उनका महत्त्व सिर्फ कीडे का महत्त्व होता है। मर गए तो लोगो ने कहा, चलो, समाज की चादर से एक बदनुमा धब्बा मिट गया।

'विवेक भाई ! साहित्यकार तो इन सब लोगो से अलग होता है। वह समाज का पहरवा होता है। राष्ट्र को नयी चेतना, नयी दृष्टि देता है। साहित्यकार का जीवन और दीपक का जीवन एक होता है। दोनो दूसरो के लिए जीते हैं, मरते है।'

विवेक चुपचाप उसका भाषण पीये जा रहा था। उसके मस्तिष्क के सुषुप्त स्नायु तन्तुओ म स्फुरण हो रहा था। उसे लग रहा था कि कही कुछ गलत हुआ है। वे अब तक टी हाउस के दरवाजे पर आ चुके थे। अदर का वही पुराना दृश्य था, मेजों के इद गिद नये पुराने चेहरे नजर आ रहे थे। हा, कोने वाली मेज पर आज भी बिजली साहब पहले की तरह अधिकार जमाए थे। उसके साथ ही काफी का मजा लेने वाले कई ऐस नौजवान लेखक बैठे थे, जो उसे उस्तादे-फन का सेहरा बाधकर अपनी दुकानदारी जमाने की कोशिश म थे।

विवेक उधर चलने लगा तो चक्रपाणि ने उसे टोका— विवेक टुच्चों की सोहबत म बैठोगे तो टुच्ची सोच पदा करोगे। मुझे जब यह पता चल कि बिजली साहब सिर्फ 'बिजली गिराने वाले साहित्य के ही सजक हैं तो मैंने उनसे किनारा कर लिया। आओ, तुम्हे नये लोगों से मिलायें जो समाज और राष्ट्र का नवनिर्माण करना चाहते हैं।

व दोनों दूसर कोन की ओर बढ गए। जहा नीमक्तरी दाढीवाले, क्लीनशेव वाले और उगती रेशमी दाढीवाले नौजवान बैठे गरमा गरम बहस के अटूट सिलसिले म भाग ले रहे थे।

विवेक मे परिवतन तो हुआ, लेकिन दीप्ति क सामने आते ही वह आपा खो बैठता। उसका दिल जोरो से धकडने लगता। शरीर मे कपकपी-सी आती। दीप्ति उमस बेबाकी से बात करती तो वह स्वय को कुछ कह सकने मे असमथ पाता। शब्द कठ म फसे रह जाते। होठों मे महज थिरकन भर होती। दीप्ति ऐसी अनजान न थी, जो समझ न पाती हो। समझते हुए भी वह अनजान बनी रहती थी और इतना अवसर न देती कि वह उस पर हावी हो जाय।

एक दिन शाम क धुधलके म विवेक अपने कमरे में बठा दीप्ति के विषय मे सोच रहा था। बच्चे सारा दिन दीप्ति के घर पर ही रहते थे। शाम को वह उन्हे विवेक के पास छोड जाती अथवा विवेक स्वय उन्हें लिवा लाता। आज विवेक की प्रतीक्षा कर दीप्ति बच्चो को छोडने आयी तो कमरे म घुप्प अधेरा था। किवाड

खुले थे। उसने बत्ती के स्विच पर हाथ रखते हुए कहा—'यह क्या, बत्ती तक नहीं जलाई।'

बच्चे उछलकर सोफे पर चढ़ गये और विवेक स लिपट गये। बबलू दीप्ति की गोद मे सो गया था। दीप्ति की बात पर विवेक न दार्शनिक ढग स कहा—'मुझे अधेरा अच्छा लगता है। जब मन मे अधेरा हो तो बाहरी प्रकाश से क्या लाभ ?'

'विवेक, तुम म सोचने की बुरी आदत है। सोचना बद कर नामल जीवन जियो। तुम्हे इन नन्हे बच्चो के लिए बहुत कुछ करना है। अब तुम्हे उनके लिए मा और बाप दोनो की जिम्मेदारिया निभानी ह।'

कहती हुई दीप्ति बबलू को शयन-कक्ष म सुलान चली गयी।

'दीप्ति, मैं सोचता हू, औरत के बिना बच्चो का पालना मेरे लिए सभव न होगा।' विवक विमल और अलका स खेलता हुआ वही से बोला।

दीप्ति एक क्षण रुककर सोचती रही और बाली—'दूसरी शादी करोगे ?'

विवेक चुप रहा।

विवेक, बच्चों के लिए ही लोग विवाह करत हैं। सा भगवान ने तुम्हें कैस सुन्दर बिलौट से बच्चे दिए हैं। विवाह करोग तो न जाने कौन कैसी आये ?' दीप्ति ने अपन मन की शका प्रकट की।

'यह ता ठीक है। सोचता हू, बच्चो का गाव मे इनके दादा-दादी के पास भेज दू। विवेक न दीप्ति की राय जाननी चाही।

पिताजी और माताजी को यही ले आओ। बुढापे म उन्हे भी सहारे की आवश्यकता है और तुम्हारी दिक्कत भी आसान हो जाएगी। बहुत करो ता एक आया रख लो। जो घर का काम भी देखेगी और बच्चो को भी सभालेगी।'

विवेक नही चाहता था कि उसके मा-बाप शहर मे आयें। जिस स्वच्छद जीवन के लिए उसने अपना सवनाश किया है, वे उसमे बाधा बनें। वह बाला—'व नही आयेंग। उन्हे जमीन के टुकडे से मोह है। यदि उन्हे शहर मे रहना होता तो रिटायर होन के बाद गाव जाते ही क्यो ! पिताजी का कहना है कि वे बाप-दादा से विरासत मे पायी जमीन को नही छोड सकते।'

खर ! जैसा ठीक समझो, करो ! यह तुम्हारी घरेलू समस्या है।' दीप्ति बबलू का सुला चुकी थी और अपने घर जाने को तैयार थी। विवेक चाहता था कि कुछ देर रुके। उसने कहा—'सिर म दद हो रहा ह। चाय बना दो। दूधिया दूध द गया था। रसोई म रखा है। बच्चों के लिए थोडा दूध भी उबाल देना।' और वह विमल और अलका का बिस्तर ठीक करन लगा। दीप्ति रसोई म चाय बनान चली गयी।

बच्चा को बिस्तर पर लिटाकर विवेक बाहर लौट आया। एकात और शतान

का मेल होता है। उस पर शैतान सवार हो गया। उसका मन उद्विग्न हो उठा। उसे इस समय दीप्ति के सिवा और कुछ दिखाई न दे रहा था। उसके रोम रोम में दीप्ति समाई थी। वह कुछ देर बाहर आगन मे, कटघरे मे बद शेर की तरह चक्कर काटता रहा। उसका अपने पर काबू न रहा तो न जाने कब रसोई घर के दरवाजे पर जा खडा हुआ। स्टोव की साय-साय मे दीप्ति उसके पदचाप नही सुन सकी। वह मस्ती मे गुनगुनाती हुई उफनते दूध को देख रही थी। उबाल आने पर दूध नीचे उतार उसने चाय का पानी चढा दिया। दरवाजे की ओर उसकी पीठ थी। विवेक धीरे और आगे बढकर हौले से उसके पीछे बैठ गया और आतुर हो उसे भुजाओ मे भर लिया। दीप्ति एक बारगी डर सी गई। वह हडबडाकर खडी हो गयी। स्टोव पर रखे भगोने को हाथ लगा और खौलता हुआ पानी फर्श पर नदी-नाले बहाने लगा। विवेक की बदतमीजी का पानी स्टोव की लौ पर पड जाने से वह बुझ गया। दीप्ति क्रोधित सिहनी-सी गुर्राती हुई बोली—'होश मे तो हो विवेक ! यह क्या बदतमीजी है ?'

विवेक अपने होशो हवास पूर्णतया खो बैठा था। उसने दीप्ति को बलात खीच कर सीने से लगाने का उपक्रम करते हुए कहा—'रानी यह सारा नाटक सिर्फ तुम्हारे लिए किया है। कल्पना को जल समाधि सिर्फ तुम्हारी वजह से दी है।'

दीप्ति उसकी भुजाओ के तग घेरे मे मछली की तरह फिसल गयी और चटाक चटाक दो थप्पड उसके गालो पर जड दिये—'हत्यारे ! नीच ! देवी-सरीखी पत्नी की हत्या कर दूसरो की पत्नियो को हरजाई समझने वाले कमीन ! दूर हो जा मेरी आखो से।'

विवेक दीप्ति के इस अप्रत्याशित व्यवहार से हतप्रभ रह गया। उसने व्यग्य किया—'सावित्री जी उस दिन क्या था ? उस दिन भी तो मैं ही था।'

'ठीक है। तुम ही थे। मैंने कितनी बार सकेत किया कि किसी अच्छे प्रयोजन के लिए किए पाप को मैं पाप नही मानती। मैंने जो किया उसे मैं शास्त्र सम्मत समझती हू। हमारे शास्त्रो मे पुत्रेष्टि यज्ञो का वर्णन मिलता है। क्या था वह ? यही यज्ञो से पुत्र होते है ! प्रकृति के विधान के नियमानुसार आचरण करने से ही गर्भाधान हो सकता है। सो सतानोत्पत्ति के अयोग्य राजा महाराजा ऐसे यज्ञ कराते थे। ऋषियो के तेज से इन्हे सतान-प्राप्ति होती थी। मैंने भी वही विधान अपनाया। तुम्हारे तेज को धारण कर राजन के लिए सतान की व्यवस्था की। यदि तुम इसे मेरी दुश्चरित्रता समझते हो तो समझते रहो। पर खबरदार ! यदि कभी मेरे जिस्म को छूने की चेष्टा की। मैं हर किसी की भोग्या काल-गर्ल अथवा बाजारू औरत नही।'

विवेक पत्थर हो गया। वाह रे नारी ! सही कहा है, स्त्री चरित्रम् पुरुषस्य भाग्यम् देवता भी नही जानते। जिस दीप्ति को उसने भोग्या समझा था,

वह इतनी उच्च कोटि की नारी हो सकती है। यह तो उसने कभी सोचा ही न था।
वह दीप्ति के सामन मन ही मन नतमस्तक हो गया और बोला—'भाभी मुझे माफ कर दो। मैं बहुत अधम हू।'

'मेरे क्षमा करन, न करन स क्या होता है। वह गोलोकवासिनी तुम्हे कभी क्षमा नही करेगी, जिस तुमने अपनी वासना की भेट चढ़ा दिया। ये फूल स दुधमुहे बच्चे तुम्हे कभी माफ नही करेंगे, जिनसे तुमने मा का प्यार छीन लिया है।'

दीप्ति और कुछ कहे बिना धीरे धीरे दरवाजे की ओर बढ गयी और विवेक इस देवी तुल्य रमणी की पीठ देखता रह गया।

विवेक न दीप्ति के सामने अपनी पराजय स्वीकार कर ली थी। उसन दीप्ति को केवल विलासिनी समझा था। लेकिन वह ता बडी टेढी खीर निकली। ऐसी खीर, जिसन उसका हलक तक चीर दिया था। उस पान के लिए उसने कल्पना खोइ, और वह स्वय भी उसके लिए खो गई। अब रह गया वह स्वय भटकता हुआ अकेला। या फिर ये तीन मासूम छौन, जो उस एकात क्षणो मे कल्पना की याद दिला कर सालते रहेंगे। उफ्! यह सब क्या हो गया? उसन अपना सवनाश अपने हाथो कर लिया। अब कल्पना लौट नही सकती। दीप्ति को वह पा नही सकता। सब सपना हो गया।

सपनो म जीने वाला आदमी कभी सफल नही हो सकता। वह भी आज तक सपनो म जीता रहा है। लेखक बनन का सपना। रोमास का सपना और अब राजनीतिज्ञ बनन का सपना। पहले दोनो सपने यथाथ की भूमि स टकराकर चूर-चूर हो गये हैं। अब चक्रपाणि का रग चढा है। वह सक्रिय राजनीति मे भाग लेकर नये सपन को साकार करन म लगा है। वह शोषण के खिलाफ जिहाद करेगा। भले ही आत्मोत्सग क्यो न करना पडा। यह उसका दृढ निश्चय था।

उसने बच्चो को गाव भेजन का फैसला किया। उनक रहते उसके लिए कुछ भी करना असभव था। दीप्ति के यो छिटक जान स यहा रहने का अथ भी निरथक हो चुका था। उसन चक्रपाणि की माफत उसके पडोस म एक बडा कमरा ले लिया था। इतना बडा फ्लैट उसे करना भी क्या था। सिर छिपान भर को जगह चाहिए थी, सो यह कमरा ठीक है।

टेम्पू म सामान लादा जान लगा। वह अलमारी स अग्रेजी के उन उपन्यासो को निकालकर फश पर फेंक रहा था, जिनकी कतरनो स उसन जानमन पॉकेट बुक्स के लिए ढेरो पाडुलिपिया तैयार की थीं। ये सब उसके लिए बेकार हो चुके थे। रद्दी का ढेर भर। उसन इन्हे कबाडी को बेचन का फैसला किया था। इनके अलावा बहुत सी पत्र पत्रिकाए भी थी, जिनकी बदौलत वह साहित्यिक क्षेत्र म

उतरा था। उसके लिए वे भी अब बेमानी थी। बदरिया के मृत बच्चे की तरह ढोने से क्या लाभ?

'जा रहे हो?' एक गभीर स्वर उसके कानो मे पडा। उसने पलट कर देखा। राजन चौखट पकडे खडा था। लगभग छह महीने मे उसकी यह पहली मुलाकात थी। विवेक सकपका गया मानो चोरी करता पकडा गया हो। पता नही क्यो, वह राजन का सामना करन स कतराता था। उसके सामने अपने को अपराधी-सा महसूस करता था। लगता था कि उसन राजन के प्रति विश्वासघात किया है। जबकि राजन ने अपनी ओर स कभी कोई ऐसा सकेत नही दिया था। कुछ क्षणो के लिए उसके हाथ रुक गए और साहस कर बोला—

'हा! मैंन चक्रपाणि के पडोस म कमरा ल लिया है।'

'शायद तुम नही जानत, चक्रपाणि उग्रवादी है।'

हो। मुझे क्या?'

'उसके पडोस म रहोगे ता कब तक बचोगे? उसके सपक में आओगे ही।'

'तो क्या होगा?' प्रत्युत्तर मे विवेक ने प्रश्न किया।

तुम समझने की कोशिश क्या नही करते?'

मैं समझन की आवश्यकता नही समझता।'

फिर तो कुछ भी कहना बेकार ह।

यह तुम्हे कहने का अधिकार है। मैं कसे कह सकता हू।

विवेक, मैंन सोचा था कि तुम एक महान साहित्यकार बनोगे।'

'कभी साचा ता मैंने भी एसा ही था लेकिन हा नही सका।

राजन चुप रहा। वह जान गया था कि विवेक पूणतया चक्रपाणि के रग म रग चुका है और उसे कुछ भी कहना व्यथ है। वह बोला—'अगर जल्दी न हो तो मेरे साथ आओ।'

'मजदूर कबाडी को बुलाने गया है। मैंन य सब बेकार चीजें बेचने का फसला किया है।'

वह दो मिनट इतजार कर लेगा आओ।' उसकी आनाकानी की परवाह किये बिना राजन न आदेश-सा द दिया। विवक भी उपेक्षा नही कर सका और उसके साथ हो लिया। राजन उस लकर सीधा अपन स्टूडियो म पहुचा। पूरा स्टूडियो रग बिरग पत्थरो और उनम तराशी मूतिया स भरा था। राजन उनके बीच बन गलियारे से होता हुआ आग-आग चला जा रहा था। विवक चुपचाप उसक पीछे बढ रहा था। अत म व स्टूडियो के एक कोन म पहुच गए। एक पत्थर के मूढे पर बठन हुए राजन न दूसरे मूढे की ओर सकेत कर विवेक का बैठा को कहा। विवक एक आज्ञाकारी की तरह बैठ गया। उस अभी तक समझ नहीं आ रहा था कि राजन उस यहा क्या लाया है? राजन न बात शुरू की— विवक, सोचत हागे कि तुम्हे यहा

लाने का मेरा मक्सद क्या है।'

विवेक न उत्तर नही दिया।

'विवेक, सामन देखो। पहचानते हो ?' राजन उसे चुप देख बोला।

विवेक चौंक गया। सामने एक बेस पर दो आदमकद बुत तराशे गए थे। बुत क्या, मानो दो सजीव देह उसके सामने खडी थी। वही पोज। वही छवि। बेस पर कलात्मक अक्षरो मे अंकित था—'स्वर्गच्युत अप्सराए।'

यही शीर्षक दिया था उस दिन रेलवे प्लेटफार्म पर। मूर्ति की तरह उस दिन भी कल्पना और दीप्ति गलबहिया हुई खडी थी। वर्षो पुरानी याद उसके मानस म कौंध गयी। वही साचे म ढले अग और वही विश्वमोहिनी मधुर मुस्कान। विवेक चकित हो युगल सहेलियो को एकटक देख रहा था। उसे यो अपलक देखते हुए राजन ने कहा—'विवेक, यह मेरी वर्षो की साधना है। बडे अरमान म बनाया था इन्हें। जानते हो, पेरिस म होने वाली अतर्राष्ट्रीय प्रदशनी के लिए चुना गया है इन्हे। पर तुमने मेरी सारी आकाक्षाओ को खडित कर दिया है। मैं अब प्रदशनी मे भाग नही लूगा और यदि लूगा भी तो इन्हें इस रूप मे प्रदर्शित नहीं करूगा।' कहते कहते राजन आवेश म आ गया—'मैं इन्हें वीनस का रूप दूगा। रूप म दाग होना ही चाहिए।'

वह तडपकर खडा हो गया। उसके हाथ म हथौडा था। उसने पागलो की तरह बुतो पर प्रहार करन शुरू कर दिए। कल्पना की गरदन एक ही वार मे अलग कर दी और दीप्ति के दोनो हाथ कधो स तोड दिए। शायद वह उनके और भी अग भग करता, लेकिन विवेक ने लपककर उस अपनी गिरफ्त म ले लिया—'क्या कर रहे हो, राज ? पागल हो गये हो क्या ?'

हो-हो' राजन का पैशाचिक अट्टहास गूज उठा। वह उन्मादी की भाति चिल्लाया—'विवेक मैं पागल नही, तुम पागल हो, कमीने हो। मित्रद्रोही हो, नीच हो। तुमने एक देवी को समाप्त कर दिया और दूसरी की उन भुजाओ को भ्रष्ट किया, जिनको उसके देवता के गले म होना चाहिए था। मैंने भी वही किया जो तुमन किया है। मैंने कल्पना को कत्ल कर दिया और दीप्ति के अपवित्र हाथो का नष्ट कर दिया। अब दो इन्हे नाम। मुझ पसद होगा। तुम्हारा दिया नाम मुझे पसद होता है न !'

विवेक अपराधी सा लज्जित हो गया। उसने राजन के हाथ से हथौडा छीन कर दूर फेंक दिया और उस पुन मूढे पर बैठाते हुए बोला— राज, मुझे माफ कर दो।'

'मैं कौन होता हू माफ करन वाला। ये देविया ही तुझे माफ कर सकती हैं।'

'कल्पना स मैं अगले जन्म म क्षमा माग लूगा और दीप्ति न मुझे पहले ही क्षमा कर दिया है। राजन, समझन की कोशिश करो। मैंन भले ही पाप किया हो,

पर दीप्ति निष्कलंक है। उसने जो भी किया, एक शुभ प्रयोजन के लिए किया। मैं विश्वास दिलाता हू राज उस दिन के बाद से मेरा दीप्ति से कोई सम्बन्ध नही है। मै उसे आज भी गगाजल की तरह पवित्र मानता हू। वह विदुषी है। गार्गी और मैत्रेयी के समान विद्वान है। उसकी तार्किक बुद्धि के सामने मैं पराजित हुआ हू।'

राजन के मन का कलुष दूर हो गया। यद्यपि दीप्ति उसकी सम्मति से विवेक के सपर्क मे आयी थी। उसने तर्कों के आधार पर उसे सतुष्ट कर दिया था, लेकिन फिर भी उसके मन मे सदा एक कचोट रहती थी कि जो एक बार दूसरे के बिस्तर पर जा सकती है, वह फिर क्या नही जा सकती उसकी शय्या पर। वह उठा और हथौडा-छेनी लेकर मूर्तियो के बेस पर पहले लिखे अक्षरो को साफ कर उकेरने लगा—'खडित प्रतिमाए।'

विवेक के घर पर नित्य स्टडी सर्किल लगता। शहर के कोने-कोने से नौजवान राजनीतिक व्याख्यान सुनने आते। व्याख्यान देने वालो मे चक्रपाणि के अलावा राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे के जाने-माने नेता भी होते। विवेक का कमरा राजनीतिक गहमागहमी का तीर्थ बन गया था।

यह स्थिति ज्यादा दिनो तक नही रह सकी। राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे मे एक ऐसा वर्ग भी था, जो अति उग्रवादी था। विवेक उस वर्ग से प्रभावित था। चक्रपाणि का दृष्टिकोण उस वर्ग से भिन्न था। वह क्रांति चाहते थे किन्तु भारतीय परिवेश के अनुकूल। उनका मत था, इस देश मे कभी भी आयातित क्राति को स्थान नही मिल सकता। यहा विभिन्न मत मतातरो का जमघट है। यदि हम जनता का समर्थन प्राप्त करना है तो अपनी बात यही की संस्कृति से जुडकर कहनी होगी। तभी लोग उसे आत्मसात् कर सकेगे।

बस यही से विवेक और चक्रपाणि मे अंतर्विरोध शुरू हो गया। विरोध यहा तक बढा कि कुछ ही दिनो मे वे अलग-अलग रास्तो के राही हो गये। विवेक का कहना था कि चक्रपाणि जैसे लोग केवल फैशनबिल क्रातिकारी हैं और चक्रपाणि की राय थी कि विवेक गुमराह हो गया है। वह सावन का अधा हो गया है। उसे सिवा क्राति के कुछ नही सूझता। ऐसे लोग क्राति के रास्ते मे गड्ढे हैं। क्राति हवा मे नही होती, क्रान्ति जनता करती है। ऐसे लोगो की बदौलत जनता क्रान्ति को हवा समझने लगी है।

कुछ भी हो सरकार के कानो मे जब इस सगठन की भनक पडी तो पूरा सरकारी तत्र सक्रिय हो गया। जगह जगह छापे मारे गये और इस सगठन के लोगो को गिरफ्तार किया जाने लगा। चक्रपाणि पहली रात मे ही पकड लिये गये। लेकिन विवेक बच गया। पुलिस उसकी गिरफ्तारी का भरपूर प्रयत्न कर रही थी। पर वह हाथ नही आ रहा था। वह रोज नया ठिकाना बदल देता था। कभी

बिजली साहब के यहा तो कभी तीर साहब के यहा। इसी लुका छिपी के खेल म एक दिन आधी रात मे वह राजन के फ्लैट पर जा पहुचा। राजन को उसके असमय आने पर तनिक आश्चय नही हुआ। मानो वह पहले से जानता हो कि वह एक दिन अवश्य यहा आयेगा। केवल इतना ही कहा— विवेक, तुम आ गये। अच्छा ही हुआ। अखबारा मे रोज पढता हू कि अमुक स्थान पर आज राष्ट्रीय मुक्ति मार्चे के इतन लोग पकडे गये। मेरा दिल धक्डने लगता है कि कही तुम भी उनमे से एक न हो।'

विवेक चुपचाप सुनता रहा। कैसे कहे कि वह अभी तक पकडा तो नही गया लेकिन पकडा जा सकता है। दीप्ति सौर म थी। एक सप्ताह पहले उसने नव शिशु को ज म दिया था। राजन का बाल सुनकर वह जाग गयी थी। वह वहीं से बोली— कौन है ?'

'विवेक।' राजन ने छोटा-सा उत्तर अ दर की ओर उछाल दिया।

विवेक का नाम सुनकर वह गदगद हो गयी। सोचा, शायद वह बुलाने से न आता। अब वह अपन और उसके बच्चे को देख सकेगा। उत्सुकता दबाती वह बाली—'इतनी रात गये कैसे आये ?'

विवक को उसका प्रश्न काटे की तरह चुभ गया और सोफे से खडा होता हुआ बोला—'चलू ! कष्ट दिया आपको। क्षमा चाहता हू।'

'कहा ?' राजन ने प्रश्न किया।

कही भी जाया जा सकता है।'

'बच्चे न बनो, विवेक ! रात का एक बजा है। ऐसे मे जाओगे तो पुलिस को सदेह हागा और पकड जाओगे।'

'मेरी वजह स तुम पर आफत आ सकती है।'

चिन्ता न करो। रात म कोई नहीं आएगा। सब जानते है कि यह घर सरकार के टुकडा पर पलने वाले एक अदना स मूर्तिकार का है।'

दीप्ति अ दर बच्चे को दूध पिलाती हुई सारा बाते सुन रही थी। वह बोली— 'आप लोग अन्दर आ जाइए।'

राजन खडा हो गया लकिन विवेक असमजस म डूब गया। वह मोच रहा था कि अ दर जाए अथवा नही। दीप्ति बाहर क्यो नही आई ? उम खडा होन न देख राजन बोला—'विवेक तुम्हे दीप्ति बुला रही है। वह बाहर नही आ मकती। लडका हुए अभी सातवा दिन है।'

विवेक काप गया। उसका बच्चा ! क्या वह दीप्ति का सामना कर सकगा ? राजन उसकी स्थिति का भाप गया और बलात मुस्कराने का प्रयास करत हुए बोला—'आओ ! बच्चा दख लो। फिर न जाने कब अवसर मिले।'

राजन के चेहरे पर अवसाद फिर आया था। पता नही क्यो परिस्थितियो मे

समझौता कर लेन के बाद भी वह बच्चे के पिता होने का गुरुतर दायित्व झेलने म असमथ पा रहा था। विवेक न एक पलक उसके चेहरे पर घिरे भावो को देखा और उठकर उसके साथ अन्दर चला गया। कमरे म प्रवेश कर राजन न जीरो वाट का बल्ब बन्द कर ट्यूब जला दी। पलग के पास पडी कुर्सी की ओर सकेत कर दीप्ति बोली—'बैठिए, विवेक जी!'

विवेक बैठ गया। दीप्ति ने राजन की ओर उमुख होकर कहा—'आप चाय बना लें। नौकरानी तो सोई होगी। कुछ खाने के लिए भी लेत आना। इन्हें भूख लगी होगी।'

वास्तव म विवेक को भूख लगी थी। सध्या समय जैसे ही वह होटल म खाने के लिए जाने लगा, उसे सदेह हुआ कि कोई उसका पीछा कर रहा है। उसने गौर से पीछा करने वाले को देखा तो शक सही निकला। सी०आई०डी० वाला उसका पीछा कर रहा था। उसने अन्दर जाकर नल पर हाथ मुह धोये और काउण्टर के पीछे बैठे व्यक्ति स बातें कर बाहर निकल आया। सी० आई० डी० वाले ने सोचा होगा कि खाना खाने मे कुछ समय तो लगेगा ही। वह बाहर सडक की दूसरी पटरी पर चला गया। विवेक आख बचाकर एक पतली-सी गली मे घुस गया और वहा स सीधा पैदल ही राजन के फ्लैट पर आ गया था।

राजन बाहर चला गया। कमरे मे रह गये सिफ तीन प्राणी—विवेक, दीप्ति और उसका नवजातक। दीप्ति ने बच्चे को उठाकर तौलिये म लपटा और विवेक की ओर बढा दिया। विवेक ने यत्रचालित से दोनो हाथ आग पसार दिये। गोद मे लेकर उसन बच्चे की प्यारी-सी चुम्मी ली। वह बच्चे का रग रूप देखकर मोहित हो गया। बच्चा बिलकुल उस पर गया था। पिछली घटनाए उसके मस्तिष्क म रेंगने लगी तो उन्हे झटकने की गरज से वह बोला—'कहो नन्हे शैतान!'

बाप शतान तो बेटा शैतान होगा ही।' दीप्ति ने चुटकी ली। विवेक सुख हो गया। दीप्ति की बेबाकी उसे सूई सी चुभी। लेकिन अपने को सयत कर बोला—मैं शैतान या राजन?

तुम हो। वह शरारत से मुसकराई—शतान नही तो शतान से कम भी नही। विवेक, तुम शैतान नही मान लेती हू। पर शैतानियत के कब्जे म अवश्य हो। यही कारण है कि तुम हमेशा असफल रहे। असफलताओ न तुम्हें अराजकतावादी बना दिया है। साहित्य मे तुमने अराजकता फैलाई सक्स म अराजकतावादी रहे और अब राजनीति मे भी अराजकता का पल्ला थामे हो। सच कह रही हू विवेक, तुम राजनीति मे भी टिक नही पाओगे।'

'गाली दे रही हो?' विवेक तिलमिला गया।

सच्ची बात गाली ही लगती है। समय थोडा है बातें बहुत हैं। मैं विस्तार न कुछ भी कहना नही चाहूगी। मैंने आप लोगो की सारी बातें सुन ली हैं। तुम

अण्डर ग्राउण्ड हो। मैं समझती हू, तुम्हारा शहर म रहना ठीक नही है। गाव चले जाओ। वहा कौन जानता है कि तुम यहा क्या करते रहे हो। वहा तुम अधिक सुरक्षित होगे।'

'ठीक है। मैं सुबह ही गाव चला जाता हू। बच्चो से मिले भी बहुत दिन हो गये हैं।' विवेक न दीप्ति की बात मान ली। तभी राजन चाय और खाने की कुछ चीजें ट्रे में लकर अदर आ गया।

विवेक थोडी देर ही सो पाया। वह रात-भर सोचता रहा। मजिल कहा से शुरू की थी और वह किस ओर बढ गया। आगे अन्त कहा होगा ? कुछ नही कहा जा सकता। सामने सिर्फ बलवती आशाओ का सागर है। अथाह, अगाध। उसे लगा, वह सागर केवल मरुस्थली है। जिसकी मरीचिका म फसा है वह। एक दिन प्यासे मृग की भाति वह भी दम तोड देगा।

उसने करवट बदली और विचारो ने भी। कहा जाओगे ? घर ? पर घर है कहा ? जिस वह घर की सज्ञा दे रहा है, वह तो उसके लिए केवल खण्डहर है। जिसम दो बूढे जजर शरीर अपनी यात्रा का अन्तिम पडाव डाले हैं। किसी दिन भी उनका हस उड जायेगा और रह जायेंगी केवल तीन नन्ही मासूम जानें—विमल, अलका और बबलू। जिनकी स्थिति उस माटी के ढूह पर उगे खर-पतवार से अधिक नहीं। घर नाम की चीज तो उसन स्वय पतितपावनी की उन्मुक्त लहरों मे प्रवाहित कर दी है। कल्पना —पत्नी, घरनी। जिसके बिना घर की कल्पना ही नही की जा सकती और समझदार लोगो न कहा भी है—'बिन घरनी घर भूत समान।'

और उसे बचपन मे सुनी हरकेश नम्बरदार की एक तुकबन्दी याद आ गयी—

घर वह कौन काम का
जिसमे हो न घरवानी।
घरवाली वह कौन काम की
जिसके हो न लाला-लाली।
लाला-लाली वह कौन काम के
जिस घर मे हो कगाली।
कगाली वह कौन काम की
जो बिकवा दे लोटा थाली।

उसने पूरी तुकबन्दी पर गौर किया। उसकी सटीकता पर उसे तनिक भी सदेह नहीं हुआ। पर अब कभी घर बन सकेगा, इसमे सदेह है। सदेह ही नहीं, निश्चित-प्राय था कि अब उसे कोई भी लडकी नही स्वीकारेगी।

दीप्ति स ताडित होकर उसने पुराने स्वतत्रता सग्राम सेनानी जगनराम के परिवार म पैर पसारने का प्रयत्न किया था। उसका लडका सुदीप साहित्य-सृजन

मे रुचि रखना था। साहित्यिक होने के नाते इन दोनों का परिचय पहली बार टी-हाउस में हुआ था। सुदीप विवक की सस्ती लोकप्रियता से काफी प्रभावित हुआ था। लेकिन विवेक उसकी छोटी बहन सुषमा के कारण ही मित्रता बनाये था। जगतराम ने उसकी साहित्यिक जीवन की दो चार प्रारम्भिक रचनाएं पढ़ी थी और उसे क्रान्तिकारी लेखक मान लिया था। धीरे धीरे विवेक उस परिवार में इतना घुल मिल गया कि वह बे रोक टोक किसी समय भी आ-जा सकता था। वह सुषमा से एकान्त मे घण्टा बात कर सकता था। सुषमा को फसाने के लिए इतनी स्वतन्त्रता काफी थी। पर सुषमा फसी नही। बडी चालाक लडकी थी वह। वह पलट करती रही। विवेक मूर्ख बना समझता रहा कि कबूतरी छतरी पर आ रही है। रोज चुग्गा पडेगा तो एक न एक दिन आएगी ही, बचकर जाएगी कहा? वह कुशल कबूतर बाज की तरह 'खाना खाना' कर उसे रिझाता रहा, ललचाता रहा। मगर कबूतरी ने एक दिन जो उडान भरी फिर लौटकर नही आयी दडबे म। जगतराम सिर थाम रह गये। विवेक मुह फाडे रह गया। मोहल्ले पडोस वाले हाथ मलते रह गये। सुषमा स्कूटर ड्राइवर बन्तासिंह के साथ फरार हो गयी। वह उसे राज कॉलेज ले जाया करता था। आज सुबह जब वह कॉलेज जाने के लिए तैयार हो रही थी तो उसकी तैयारी और दिनो से भिन्न थी। वैनिटी बग कुछ फूला हुआ था। उसने उसमे अपने दो चार गहने और बचत किये हुए रुपये सहेज लिये थे। एक बण्डल भी बना लिया था, जिसमे दो-तीन साडी और ब्लाउज लिपटे थे। भाभी से उसने बताया था कि वह लाड़री पर डाईक्लीन कराने को कपडे देकर कॉलेज जाएगी।

सुषमा के यों चले जाने से जगतराम और विवेक को छोड़कर सभी परिवार वाले ऊपर से दुखी और अन्दर से सुखी थे कि चलो एक पच्चीस तीस हजार की डिग्री अपने आप टल गयी।

सुषमा चली गयी। चली जाये, उसकी बला से। कौन उसकी मगेतर थी। उसने ठण्डी सास छोडी। मन को समझाया उसे सुख के कुछ क्षण चाहिए थे। भोगे। खूब भोगे। जी भरके भोगे। उसने कौन अग का रसपान नही किया सुषमा के। वक्ष की पहाडियों के उभार से जाहुआ के उदगम की दरार तक। सभी को छुआ, सहलाया। कभी कोई प्रतिवाद नही किया उस अल्हड किशोरी ने।

किन्तु थी चालाक। स्वय लस्त-पस्त हुई उसे लस्त पस्त किया। मगर मजाल क्या, जो कभी होश गवाये हो। बात जब सीमा से आगे बढने लगती तो वह स्प्रिंगदार खिलौने की तरह साफ उछलकर अलग हो जाती। वह उस प्यासे की तरह तडपता रह जाता जिसके होठो को पानी का कटोरा लगाकर पीने से पहले अलग कर लिया हो। उसे उस दिन की घटना याद हो आयी। घर के सभी सदस्य किसी निकट सम्बन्धी के यहा विवाह मे गये हुए थे। घर म अकेली थी सुषमा।

वह जान-बूझकर घर पर रही थी। सिर दद का बहाना करके।'विवेक के लिए वह जाना नही चाहती थी। उसके साथ आनन्द के कुछ क्षण बिताना चाहती थी। विवेक आया। वह खिल उठी। बसत के गुलाब की तरह उसके उर की पखुडिया विकसित हो प्यार के मकरद से गमकने लगी। चाय नाश्ता हुआ और इसके बाद दोनो मे चुहलबाजी चली। सुषमा जान-अनजाने अपनी भगिमाओ से उसे उत्तेजित करती रही, विवेक धैर्य को खोता रहा। वह कामातुर हिरनी-सी कल्लोल करती हुई उसे छकाती हुई सबसे अन्दर वाले कमरे म ले गयी। धीरे से रिरिया कर किवाड बन्द हो गये। विवेक पगला गया। उसने सुषमा को सोफे पर पटक-सा दिया। सुषमा भी आनन्दित थी। केवल बनावटी विरोध करते हुए उसने उसे अपने कपडे नोच लेने की छूट दे दी थी। सुषमा की आखे बन्द हो हो जाती थी विवेक के आलिगन चुबन मे। इतना कुछ हो जाने पर भी जब वर्जित फल चखने की बारी आयी तो वह साफ मछली-सी रपट गयी और जोर जोर से हाफती हुई फुसफुसाई—'नहीं विवेक, नही। कच्ची कुमारी हू। विवाह तक लकडी का कौमार्य किसी की अमानत होता है। हमे अमानत मे खयानत का पाप नही करना चाहिए।'

'मैं तुमसे विवाह करूगा। इसलिए तुम्हारा कौमार्य मेरा है और जो चीज मेरी है, उसे पहले प्राप्त करू अथवा बाद मे? पाप कैसा?' विवेक ने उद्वेग मे हाफते हुए कहा।

'समाज इसकी आज्ञा नही देता। तब तक यह पाप है।'

'तुम्हारी दृष्टि मे या समाज की?'

'समाज की।'

'बहुत भीरु हो।'

नही।'

'फिर इस गले-सडे समाज की दुहाई क्यो, जो दो दिलो के बीच दीवार खडी करता है?

मैं उसकी गली सडी मान्यताओ को ठुकराती हू, लेकिन मर्यादा भग करना मैं उचित नही समझती। जानते हो मर्यादा भग करने वाले उच्छृखल जीवन जीते हैं। उच्छृखलता ही समाज मन को विषैली करती ह। निन्यानबे प्रतिशत कोठे इसी उच्छृखलता के कारण आबाद होत है।'

'आह! तो कुमारी जी परम ज्ञानी भी हैं। मुझे आज पता चला?' विवेक ने कटाक्ष किया। वह सुषमा के सामने अपने को परास्त महसूस कर रहा था।

परम ज्ञानी तो शायद नही हू पर इतना अवश्य जानती हू कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी ह। उसे समाज की कुछेक मान्यताओ को स्वीकार करना ही पडता है। वना पशु और उसमे अन्तर कहा रह जाएगा।' सुषमा ने पूर्णतया गभीर होकर कहा।

विवेक चुप रह गया। चाहता तो वह बलात्कार कर सकता था। उन दोनों के सिवा वहां था भी कौन। लेकिन उसने ऐसा कुछ नहीं किया, जो सुषमा के मस्तिष्क में उसकी विकृत तस्वीर उभार सके। उसने स्वयं को आश्वस्त किया कि आज वह इस सीढ़ी तक पहुंच गयी है तो कल अवश्य समर्पण कर देगी। 'तत्ता खाये मुंह जले' की उक्ति से बचना ही हितकर होगा।

लेकिन वैसा अवसर कभी नहीं आया। वह उसे प्रोत्साहित तो करती, लेकिन ऐन मौके पर ऐसी कन्नी काटती कि वह मन मसोसकर रह जाता। सोचता, कैसी अजीब लड़की है जो खंजर भी चलाती है और दवा भी लगाती है। सकून भी देती है और तड़पाती भी है। फिर भी वह हतोत्साहित नहीं होता। पाने की चाह में तड़पना अच्छा ही लगता है और वह उस शिकारी की तरह अशान्त रहता, जो चारा डालकर जाल बिछाये सारा सारा दिन पंछी के फंसने की इन्तजार में बैठा रहता है।

सुषमा नहीं फंसी। जाल फैला-का फैला रह गया। फंसा ले गया स्कूटर वाला। वह मन-ही-मन चिढ़कर गाली देता—'साली पढ़ लिखकर भी गधी रही। चार दिन मौज-बहार मनाने के बाद जब स्कूटर वाले का मन उकता जाएगा तो फिर ठर्रा गटककर खूब धुनाई करेगा हरामजादी की। तब बहाएगी टसुवे और याद करेगी विवेक को।'

उसके मुंह का जायका न जाने कैसा हो गया। जी चाह रहा था कि सुषमा के नाम पर थूक दे। पर क्यों? सुषमा का इसमें क्या दोष है? सारा कसूर तो उसका है। प्यार की पिनक में वह विवेकशून्य हो गया था। उसने अपने जीवन का सारा कच्चा चिट्ठा उस कच्ची वय किशोरी के सामने खोलकर रख दिया था कि सेक्स के मामले में उसके विचार कितने उच्छृंखल हैं। अराजकतावादी हैं। वह स्त्री को केवल खिलौना भर समझता है। एक से खेलते-खेलते जब मन भर जाता है तो उसे दूसरी दरकार होती है। वह कभी एकनिष्ठ नहीं रहा। प्रवीण से उस तक उसके जीवन में आयी सभी लड़कियों की सूची उसने सुषमा के सामने बांच दी थी। यहां तक कि वह कल्पना की हत्या करने तक को पचा नहीं सका था।

कुछ भी तो गोपनीय नहीं रख सका था वह सुषमा से। उसने अपने सोचने-समझने की विचारधारा तक से उसे परिचित करा दिया था। परिणामतः सुषमा उससे अन्दर ही-अन्दर कटती चली गयी और अन्त में दूर छिटक गयी। इतनी दूर कि अब वह उसकी पकड़ से बाहर है।

उसे अपने विगत जीवन पर हंसी आयी। आंखों के सामने बन्दर की तरह खाकी निकर पहनकर शाखा में लाठी भांजने वाला रूप तैर गया। किशोरावस्था को लांघते-लांघते वह गांधी से प्रभावित हुआ था। फिर उसका रुझान समाजवादी खेमे की ओर हुआ। लेखक बनने के बाद उसने प्रगतिशील कहलवाना पसंद किया

और अब टेररिस्ट का बिल्ला लगवाये पुलिस से आख मिचौनी खेलता फिरता है। गिरफ्तारी डेमॉक्लीस की तलवार की तरह उसके सिर पर लटक रही है। किसी दिन भी जेल मे ठूसा जा सकता है। इसके बाद घोर यन्त्रणाए।

वह सिहर उठा। उसे लगा, उसके शरीर पर ढेरो कानखजूरे, छिपकलिया और बिच्छू रेंग रहे हैं। नाखूनो मे पिनें ठुकी हैं। उसके नीचे बिस्तर पर सफेद चादर नही, बर्फ की सिल्ली बिछी है।

वह फुरहरी लेकर बैठ गया। उसका दिमाग भन्ना रहा था। उफ! यन्त्रणा! यन्त्रणा! सारा जीवन ही यन्त्रणामय लगने लगा उसे। किसे दोष दे? स्वय उसने ही तो यन्त्रणाओ का जाल रचा है अपने चारों ओर। यदि वह सीधे रास्ते पर चलता रहता तो आज स्थिति ही कुछ और होती। न सही सम्पन्नता, कगाल भी न होता। भले ही राजमहल का सुख न मिलता, पर चैन के क्षण बिताने को घर नाम की कुटिया अवश्य होती। जिसमे उसका छोटा-सा परिवार किलकता होता। लेकिन अब तो भागम भाग के सिवा उसके सामने विकल्प ही कोई नही।

पौ फटना चाहती थी। वह बिस्तर त्यागकर खडा हो गया। उसके बराबर वाली चारपाई पर राजन सोया था। न जाने क्यो उसके हाथ आगे बढ़े और चरण स्पर्श कर वह आहिस्ता से किवाड बन्द कर बाहर निकल गया।

विवक सडक पर आ गया। सोये शहर ने आखें खोलनी शुरू कर दी थीं। गली के मोड पर सफाई कमचारी इकट्ठे होने लगे थे। चायवाला और हलवाइयो की भट्ठिया कसैला धुआ उगलने लगी थी। जब वह चाय की दुकान के पास पहुचा तो चाय पीने की इच्छा हुई। उसने खभे के नीचे खडा होकर कलाई ऊची कर, घडी दखी। चार बजन म पाच मिनट थे। गाडी ठीक चार पचपन पर छूटती है। एक घटे म उसे स्टेशन पहुचना था। दूसरी गाडी सवा दस बजे जाती है। वह दिन निकलन स पहले शहर छोड देना चाहता है। दिन का चोर हो गया है वह। जानन-पहचानन वालो का भय। किमी स भेंट हो गयी तो वह आज भी नही जा सकेगा। और न गया तो शहर मे रहते पुलिस की आखो से दूर रहना मुश्किल है। किसी मित्र पर उसके कारण कोई आफत आ सकती है। क्यो फसाये किसी को। उसन दृढ़ निश्चय किया कि कुछ भी हो, उसे इसी घडी शहर को अलविदा कहना है। वह मेन रोड पर घूम गया। सामन स आते स्कूटर को रुकने का इशारा किया। 'स्टेशन' कहकर वह उसमे सवार हो गया।

गाडी चलन मे अभी बीसेक मिनट थे। उसने टिकट खरीदा और प्लेटफाम पर पहुच गया। चाय की तलब लगी थी। वह टी-स्टाल पर चाय पीने लगा। उसके पास खड दो यात्री भी चाय पी रहे थे और अखबार का एक एक पन्ना बाटकर पढ़ रह थ। उसकी निगाह एक मोटी सुर्खी पर गयी। उसके दल के कई सदस्य पकडे

गये थे। उसने धडकते दिल शुक्र किया कि अब वह कुछ ही देर में पुलिस की गिरफ्त से दूर चला जाएगा।

उसके पास से कोई खाकी वर्दीधारी गुजरता तो दिल की धडकन बढ जाती, कोई उसे पहचान न ले। मगर उसे किसी ने पहचाना नही। बुक स्टाल से उसने एक अखबार और एक-दो पत्रिकाए खरीदी रास्ते मे मन लगाने को। इंजिन ने एक-दो बार चीखकर लोगो को चलने के लिए सावधान किया। वह मुह के सामने वाले डिब्बे मे चढ गया। गाडी चली तो उसने अपने को सुरक्षित महसूस किया। अब कोई खतरा नही था।

आउटर सिगनल के बाद गाडी खेतों के बीच दौडने लगी। उसने खिडकी से बाहर मुह निकाला तो प्रात की ठडी बयार माथा चूमने लगी। कितने दिनो बाद उसे खुली हवा का स्पर्श मिला था। उसने नजर उठाकर शहर की ओर देखा। सूरज के आगमन की सूचना से शहर की बत्तिया पटबीजने-सी दिखाई देने लगीं। आसमान का रग गहरा नारगी हो रहा था।

उसके अदर कही कुछ टूटा। अतस मे पीडा सी हुई। जब वह शहर आया था तो उसके साथ कोई और भी था—कल्पना! उसकी पत्नी! उसके साथ मिलकर कितनी कल्पनाओ के सूत्र जोडे थे शहर के साथ उसने। उसका भविष्य आखों के सामने जगर-मगर होने लगा था। वह महान लेखक बनेगा। उसके अभिनदन समारोह होंगे। गला फूल-मालाओ से लाद दिया जायेगा। कितने ही राष्ट्रीय पुरस्कारो से उसे सम्मानित किया जायेगा। वह अपना ही नही, अपने पुरखो का नाम भी उज्ज्वल करेगा। इसीलिए बुजुर्गों ने पुत्र को कुलदीपक, कुलतारक कहा है।

कुलतारक! विद्रूपता उसके चेहरे पर लहरा गयी। वह होंठो-ही होठो मे बुदबुदाया— मेरे जैसे कुलतारक यदि हर किसी के घर जन्म लेंगे तो लोगो को बहुत जल्दी ही अपनी धारणाए बदलनी होगी। मैं तो कुछ भी नही कर पाया अपने जीवन मे। हमेशा हवा मे जीता रहा। कल्पनाओ को कभी ठोस जामा पहना ही नही सका। हर क्षेत्र मे सफलता पाने के लिए हमेशा अराजकता और उच्छृखलता का पल्ला पकडे रहा। नतीजा सामने है। धोबी का कुत्ता घर घाट किधर का भी नही रहा। जिस कीर्ति स्तभ की स्थापना की उसने कल्पना की थी, वह धराशायी हो गया और उसके खडहरो पर उसे अपनी मौत पर कुत्ते रोते दिखाई देते हैं।

आज वह यहा से नाता तोडकर जा रहा है खाली हाथ। न कोई सफर का साथी है न कोई विदा करने वाला था। सिर्फ यादें मन के किसी कोने मे कुनमुनाती हैं। खट्टी-मीठी यादें। जो सुख कम देती हैं और सालती अधिक हैं। बिल्कुल

अप्रत्याशित। छब्बेजी बनने के चक्कर मे वह दूबेजी भी न रहा। काश ! वह चौबेजी ही बना रह पाता।

वह इसी उधेड़-बुन म लगा रहा। गाडी दौडती रही और विचार भी। स्टेशन छूटत रहे और आते रहे। लेकिन न विचार रुकते थे और न गाडी ही। गाडी अपन गन्तव्य तक पहुचने की जल्दी में थी और वह ? एक अतहीन सफर का मुसाफिर था। गन्तव्य सब दूर छिटक गये हैं। ठीक पीछे छूटत स्टेशनो की तरह। थक्कर इजिन किसी बडे स्टेशन पर कोयले-पानी का राशन लेने रुकता ता वह भी पेट के इजिन को चाय की स्टीम स तरोताजा कर लेता।

गाडी रुकी। मुरादाबाद जक्शन था। यहा से गाडी को अपना रास्ता बदलना था और उसे भी बस पकडनी थी गाव जाने के लिए। उसकी आखो के सामने गाव का पुराना खाका खिच गया। मिट्टी के लौंदा से थोपी कच्ची दीवारों पर रखे फूस के छप्पर, ढोर-डगरो के गोबर की बू से गधियाते आगन। कीचड भरी नालिया। धूल भरे रास्ते और गाव के गोरे उपले पाथती गाव की गोरिया। घूरे के अबार। 'चर-चू' का सगीत उडेलते रहट। 'बर-तिक' का नारा उछालते हरवाहे। फिर मनोरजन के लिए नौटकी-स्वाग। उनमें स्त्री पात्रा का अभिनय करते निमूछिये लौडे। नगाडे की चोट पर उडते चौबले और बहरतवील।

फिर याद आई दरियाव सिंह की चौपाल पर गाव की पचायत। गाव के छोटे-छोटे मामले वही निमट जात थे। तहसील-कचहरी का रुख कोई तभी अपनाता था, जब मामला अत्यत गभीर हो और पचो की पकड से बाहर हो। गाव की पचायत मे न्याय होता था, न्याय। बिल्कुल दूध का दूध, पानी का पानी। घसीटा के रामजीवनवा न बुधवा की रामकली उर्फ रामो को बाजरे के खेत म पकड लिया था। पचों न फैसला दिया—'रामजीवनवा को रामो पाच जूतिया भरी पचायत मे लगाये और गले मे जूता का हार डालकर सारे गाव मे घुमाया जाए। क्या हुआ जो रामो डोमडे की लडकी है। गाव की लडकी सबकी इज्जत होती है। सुना है, इसके बाद रामजीवन को किसी ने गाव मे नही देखा। शम के मारे वह परदेस चला गया।

कितनी ही यादें उभर आई थी विवेक के मस्तिष्क में गाव की। लेकिन अब तो गाव का रूप ही बदल गया होगा। पहले तो रास्ते तक सही नही थे और अब बन गयी हैं पक्की सडकें। जिस पर दौडती है बसें। रिक्शा बस स्टैंड पर आ रुका। उसके विचार भी रुक गये। किराया चुका वह टिकटघर की ओर बढ गया।

बस छूटन का समय हो गया। केवल विवेक के साथ वाली सीट खाली थी। कडक्टर चालान ले आया और सवारी गिनने लगा। एक-दो-तीन पैंतीस साढ़े पचास। एक सवारी कम है। उसने ड्राइवर को ऊची आवाज मे बताया। ड्राइवर हार्न बजाकर सवारी को बुलाने लगा। तभी कडक्टर की निगाह एक

महिला पर गयी, जो टिकट पर लिखे बस नबर को स्टैंड मे खडी बसो के नबरो से मिलाकर अपनी बस ढूढ रही थी। कडक्टर ने खिडकी से आवाज लगाई—'बहनजी जल्दी आइये। यही बस है।'

महिला बस मे चढ गयी। कडक्टर ने खिडकी बद करते हुए चालक को चलने का आदेश दिया—'चलो जी, गाडी पूरी है।'

महिला अभी तक गैलरी मे खडी बैठने के लिए सीट तलाश रही थी।

'बाबूजी के साथ वाली सीट खाली है, बहनजी' कडक्टर ने विवेक के बराबर वाली सीट की ओर इशारा किया और महिला उस ओर बढ गयी। बस आउटर गेट से निकलकर मेन रोड पर घूम रही थी। महिला सभलते-सभलते भी आधी सीट और आधी विवेक के ऊपर गिर-सी गयी। बस सीधी दौडने लगी तो वह ठीक से बैठती हुई बोली—'सॉरी।'

विवेक बस मे बैठते ही अपने अतीत मे खो गया था। उसने महिला की बात पर ध्यान नहीं दिया और तनिक-सा बस-बॉडी की ओर खिसक गया।

बस शहर छोडकर खेतों और बागों के बीच दौडने लगी। महिला ने पैरो के पास रखी कडी से 'पत्रिका' निकाली और पन्ने पलटने लगी। विवेक का ध्यान अनायास उसकी ओर खिच गया। उसकी दृष्टि भी पन्नो पर फिसलने लगी। आद्योपांत पत्रिका देख लेने के बाद महिला ने नये सिरे से पन्ने पलटे और 'रेत का घर' कहानी पढने लगी। विवेक चौंक गया। रेत का घर उसकी कहानी है। न जान कब उसने पत्रिका को भेजी थी और भेजने के बाद वह बिल्कुल भूल चुका था कि उसने कोई कहानी प्रकाशनाथ भेजी भी थी। इसके बाद कई मकान बदलने के कारण सपादक का स्वीकृति पत्र भी उसे मिल नहीं पाया था।

शीषक से होती हुई उसकी दृष्टि पन्ने के बीचों-बीच छपे अपने नाम पर जा अटकी। उसके दिल की धडकन तेज हो गयी। वह इतना प्रसन्न था कि कलेजा उछलकर शरीर से बाहर आ जाना चाहता था। उसने महिला से एक मिनट के लिए धमयुग मागना चाहा। मगर माग नहीं सका। महिला की तल्लीनता देखकर वह सोचने लगा, उसने अपन पढने के लिए खरीदा है। उसका रसभग क्या किया जाए। एक उडती निगाह से उसने महिला के मुखमडल को निहारा तो कही से अतीत की हल्की-सी रेखा उसके मस्तिष्क-पटल पर खिचने लगी। चेहरा कुछ पहचाना-सा लगा। उसे देखा अवश्य है, पर कहा? वह अपन मस्तिष्क पर जोर देकर बारी-बारी अपने जीवन मे आए चेहरो को उभारकर उस चेहरे से मिलाने लगा। किसी भी लडकी से उस भद्र महिला का मेल नहीं हो पा रहा था। वह थोडा अतीत की गहराई म गया तो प्रवीण की धूमिल-सी आकृति उभरी। लेकिन नहीं, यह प्रवीण नही हो सकती। प्रवीण का रग साफ शफ्फाक था। केसर मिले दूध की आभा लिये। उसके चेहरे पर चाद के दाग के बराबर भी दाग नहीं था

और न उसकी नजर कमजोर थी। इसकी आखो पर तो मोटे कांच का चश्मा चढा है। वह उलझ गया अपने आपसे। मन कहता, प्रवीण है। दिमाग तक करता, यह प्रवीण कैसे हो सकती है? महिला तन्मयता से कहानी पढ रही थी। वह उस स्थल पर पहुच चुकी थी, जहा कहानी की नायिका अपने नन्हे-नन्हे बच्चो को छोडकर आत्महत्या कर लेती है, क्योकि उसका पति परस्त्रीगामी था और उनमे कभी समझौता नही हो पाया था।

महिला ने पन्ना बदला। अगले पृष्ठ पर संक्षिप्त परिचय सहित विवेक का फोटो छपा था। उसने देखा कि महिला एक फोटो को ताके जा रही है और उसकी आखो म जल भरा है। उसकी आख के एक कोने से पानी टपककर चश्मे के काच को धुधला गया। महिला ने शीशा साफ करन के लिए चश्मा उतारा तो दूसरे कोने की बूद सीधी फोटो के माथे पर पडी। विवेक का हाथ स्वत अपने माथे पर चला गया। भूल मालूम होती है। वह अपनी हरकत पर मन ही-मन हसता है।

अब महिला पढ नहीं रही थी। केवल फोटो को निहारे जा रही थी। विवेक चोरी-चोरी कभी महिला के भाव पढने की कोशिश करता तो कभी अपनी स्मृति मे उभरी प्रवीण की आकृति से उसका सामजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करता। इस बीच महिला न एक बार भी जाने-अनजाने उसकी ओर नही देखा।

'जरा देख सकता हू। ' कहकर उसने धर्मयुग लेने के लिए अपना हाथ आगे बढा दिया। उसने महिला की ध्यानावस्था भग कर दी। वह अपनी कहानी पढने को लालायित था। महिला ने धमयुग उसकी ओर बढाते हुए निमिष भर उसके चेहरे को देखा और कुछ अव्यवस्थित-सी हो गयी। विवेक धमयुग लेकर पन्ने पलटने लगा और महिला ने कई बार कनखियो से उसकी आर देखा। शायद वह भी उस पहचानने की कोशिश मे थी।

यात्रा समाप्त हुई। बस रुकते ही महिला ने विवेक को एक बार पुन गौर से देखा। शायद वह मन मे उपजे सदेह की फिर से पुष्टि कर लेना चाहती थी कि वह उसके कॉलेज जीवन का साथी विवेक ही है। वैस उसने विवेक को पहचान लिया था। किंतु किसी अज्ञात सकोचवश वह उससे बोल नही पायी थी। विवेक भी दुविधा मे था, किंतु वह निश्चय नही कर पाया था कि वह भद्र महिला प्रवीण ही है। नाक-नक्श जरूर प्रवीण के हैं, पर प्रवीण तो किसी और साचे की ढली थी। वह सगमरमरी चेहरा इतना खुरदरा कैसे हो सकता है? बिनाई कमजोर होने की बात कभी उसके सामने नही आई थी। फिर वह शहर से दूर इस अनपढ गाव मे कैसे आ सकती है। उसने तो सुना था कि उसका विवाह किसी इजीनियर स हुआ है। जो कानपुर के किसी कारखाने मे नियुक्त है। लेकिन महिला को कलाई मे सिफ एक-एक साने की चूडी पडी थी और माग बिलकुल धूल उडती पगडण्डी-सी वीरान थी। यदि यह प्रवीण है तो क्या वह वि । उसने अपनी जीभ का टसुवा दांतो

से काट लिया। नहीं नहीं, वह प्रवीण व अनिष्ट के बारे म कभी सोच भी नहीं सकता।

महिला बस स्टाप स थोडी दूर बनी कन्या पाठशाला की ओर बढ गयी और विवेक गाव की उस गली की ओर चला, जो उसके घर तक जाती थी।

समय गुजरते दर नही लगती विवक ने कल्पना भी नहीं की थी कि उसके गाव का इतना कायाकल्प हो जाएगा। उस शहर मे रहत कभी-कभार पिताजी की चिट्ठियो से गाव की उन्नति की झलक मिल जाती थी। गाव तक पक्की सडक बन गयी है। बस चलने लगी है। बच्चा की पढाई की चिंता नही रही। गाव मे ही कन्या पाठशाला और हाईस्कूल खुल गये हैं। डाकघर और चिकित्सालय की व्यवस्था शीघ्र होन जा रही है।

वह पुलकित हो उठा गाव का विकास देखकर। अपनी पढाई के दौरान वह जब कभी गाव आया करता था तो उसके चमचमात शू गद की मोटी चादर ओढ लिया करत थे। गलियो म इतना कीचड भरा होता था कि उसे कभी पजो के बल चलना पडता तो कभी छलाग लगाकर कीचड पार करनी होती। लेकिन वह आज पक्के खरजे पर बूट खटखटाता हुआ सीधा घर की दहलीज पर आ खडा हुआ। अन्दर प्रवेश करत ही सारा घर बच्चा की किलकारियो स भर गया— पापा आये, पापा आये।

अलका और बबलू चहक रहे थे। हालांकि बबलू को पहचानने मे थोडी देर लगी थी। जब वह गाव आया था तो बहुत छोटा था और अब वह स्कूल जाने लगा है। पापा की शक्ल उसके नन्हे मस्तिष्क म कुछ धुधली हो गयी थी। किंतु अलका के चहकत ही वह पापा को फौरन पहचान गया था और अलका के साथ समवेत स्वरों म 'पापा आये' का गीत गान लगा था। विवक ने अलका के सिर पर प्यार से हाथ रखा और बबलू की पप्पी लेकर हवा मे उछालकर गोदी मे लेते हुए बोला, अच्छा, तो हुजूर इतने बडे हो गय हैं।'

उसन कभी सोचा ही नही था कि बच्चे इतनी जल्दी बडे हो सकते हैं। उसे तो ऐसा लग रहा था जस सारी घटनाए कल-परसा की बातें हो। उसकी निगाह विमल पर गयी तो उसने हाथ जोडकर नमस्ते की। वह एक ओर सकुचाया-सा खडा था। विवेक ने आग बढकर प्यार से उसके कधे पर हाथ रखा और बोला—'अरे वाह! तुम तो जवान हो गय हो। नवी म पढते हो न?'

उत्तर म विमल ने केवल 'जी' कहा। उसकी ठुड्डी पर उगा सुनहरा रोआ काली रेशम म बदलन लगा था। वह झेंप गया था। बच्चो का गुल-गपाडा सुनकर कुल्हती-कराहती गठिया से पीडित मा बाहर आयी। विवेक ने बबलू को गोदी से उतारकर मा के चरण स्पश किये। मा ने विवश-सी भर्राई आवाज मे उसे आशीष दिया और उसकी आखा से दो बूद पानी टपक पडा। शायद खुशी के मारे। बेटे

के आगमन की खुशी।

रात गये तक अडोस पडोस से लोग मिलने आते रहे। कुटुम्बियो के शिक्वे-शिकायत उछलते रहे। शहर जाकर वह सभी को भूल गया। कम-से-कम बूढे-बुढिया का ख्याल रखना तो उसका फर्ज है और सबसे ज्यादा सालने वाली बात थी कल्पना की मृत्यु के बारे म पुलिस जैसी इन्क्वायरी। कैसे मरी? बीमार थी क्या? गगा मे कैसे फिसल गयी? आदि-आदि प्रश्नो के उत्तर उसके अतस को खरोचते थे और उसे एक झूठ को छिपाने के लिए सौ झूठो का सहारा लेना पडता था। पिताजी किसी काम से शहर गये थे। लौटे तो उन्होने केवल इतना ही कहा—'आ गये, कब आये?'

उनके चेहरे पर वही पूर्व परिचित गूढ गम्भीरता बनी रही। प्रश्नो से केवल ऐसा लगता था कि उन्हें विवेक के आने की आशा नही थी।

सुबह उठकर विवेक खेतो की ओर घूमने निकल गया। बहुत दिनो बाद गाव की खुली हवा का सुख मिला था। शहर की उमस भरी हवा मे यह आनन्द कहा! दरो-दीवार भी विषैली हवा उगलते हैं। सुबह-सुबह नालियो की सफाई कर्मचारी साफ करते हैं तो एक दमघोटू सडाध का भभूका नथुनों म समाकर दिमाग की रगो मे तनाव पैदा कर जाता है। वह अपने को बहुत सुखी एव स्वस्थ महसूस कर रहा था।

टहलते-टहलते वह पक्की सडक पर बस स्टॉप की ओर बढ गया। सामने कन्या पाठशाला थी। उसने देखा, प्रागण की फुलवारी मे बस वाली महिला घूम रही है। पता नही क्यों वह उसी ओर खिच गया। सदर दरवाजे पर जाकर उसके पैर रुक गये। महिला झुककर फूल चुनने मे व्यस्त थी। गुलाब के फूल तोडकर जैसे ही उसने कमर सीधी की तो सामने एक पुरुष को निहारते पाया। वह बडबडायी। उसने जल्दी-जल्दी कधे पर सरक आयी साडी को व्यवस्थित किया। दोनो की आखें चार हुइ। विवेक अभी भी निश्चय नही कर पा रहा था कि वह प्रवीण है। लेकिन महिला तो उसे बस म ही पहचान चुकी थी। अब तो और भी पक्का विश्वास हो गया था। जब वे साथ पढते थे तो विवेक ने उसे अपने गाव के बारे मे बहुत-सी बातें बताई थीं, जो उसे याद हैं। अलका के दाखिले के समय तो बिलकुल स्पष्ट हो गया था कि यह विवेक का गाव है। विवेक के पिताजी अलका को दाखिल कराने आये थे और वह उन्हे अच्छी तरह से जानती थी। पहचान कर भी वह अनजान बनी रही थी। अपने और विवेक के बीच दीवार बनने वाले से क्यो घनिष्ठता बढाए। उसके जीवन मे विष घोलने वाले वही तो थे।

वह अपने क्वार्टर की ओर लौटने लगी। विवेक ने साहस किया—'सुनिए।' उसके बढते पैर रुक गए। पीठ विवेक की ओर ही रही।

'आपका नाम प्रवीण है?' उसने उत्सुकता से प्रश्न किया।

वह चुप रही।

'उत्तर दीजिए न।' विवेक ने अनुरोध किया।

'आपने कुछ कहा ?' महिला न उसी मुद्रा मे खडे रहते कहा।

'आपका नाम प्रवीण है न ?' विवेक न अपना प्रश्न दोहराया।

'प्रवीण मर चुकी। मेरा नाम मनोरमा है।' महिला ने गम्भीरता से उत्तर दिया।

'प्रवीण मर गयी ?' विवेक ने विस्मित हो पूछा—'मनोरमा जी, आप उसे जानती थी।'

'जी।'

'कैसे ?'

'वह मेरी सहेली थी।'

'कब मरी वह ?' वह अधीर हो उठा।

जब उसका विवाह हुआ।'

'उफ !' विवेक का सिर चकरा गया। उसके मुह मे निकला—'हे भगवान ! यह क्या किया ?'

'आपको शायद कष्ट हुआ है ? महिला उसकी इस स्थिति से गद्गद हो गयी। लेकिन स्वर को सयत कर बोली—क्या लगती थी वह आपकी ?

विवेक तडप गया। वह विषाद भरे स्वर मे बोला—'मनोरमा जी, आप नहीं समझ पायेंगी कि वह मेरी कौन थी ?'

'ऐसा कौन-सा रिश्ता है, जिसे मैं समझ न सकूगी।' मनोरमा ने उसे और तडपाने की गरज से छेडखानी की। उसे विवेक की तडपन मे आनन्द आ रहा था।

'कई रिश्ते अदृश्य होते हैं।'

'और वह अदृश्य होते हुए भी महसूस किए जा सकते हैं।' मनोरमा ने वाक्-पटुता दिखाई और आगे बढती हुई बोली—'अन्दर आइए, सब बातें यही खडे-खडे कर लोगे क्या ? यह शहर नही, गाव है। कोई देख लेगा तो सारे गाव मे चर्चा होगी। आपका कुछ नही बिगडेगा, मेरी मुसीबत हो जाएगी। नौकरी से हाथ धोना पडेगा।'

विवेक अन्दर-ही-अन्दर टूट सा गया था। प्रवीण की मृत्यु का उसे गहरा सदमा हुआ था। वह घिसटता-सा उसके पीछे चलने लगा। मनोरमा ने कमरा खोल दिया और मेज पर फूलो का ढेर लगाती हुई बोली—'बैठिए, मैं चाय बनाकर लाती हू।'

आवश्यकता नही। दो बातें करके चलूगा। बच्चे इन्तजार कर रहे होंगे नाश्ते के लिए।' विवेक ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा।

'उनके साथ तो रोज चाय पीते ही होंगे। आज हमारे घर सही।' कहकर मनोरमा रसोई घर मे चली गयी। विवक सुसज्जित कमरे मे निगाह दौड़ाकर मनोरमा की सुरुचि का अध्ययन करने लगा। फिर उसने मेज पर रखी पत्रिकाओ मे से पहले दिन वाला धमयुग उठा लिया और 'रेत का घर' कहानी पढने लगा। उसे ऐसा लग रहा था, मानो कहानी किसी और ने लिखी हो। उसे अपने पर विश्वास नही हो रहा था कि वह इतनी अच्छी कहानी भी लिख सकता है। यदि वह लिख सकता है, तो घटिया साहित्य लिखकर अपनी साहित्यिक मौत क्यो की ?

उसके विचारो ने करवट बदली। साहित्य से पेट नही भरा तभी तो वह घटिया लेखन पर आया और घटिया साहित्य ने रोटी देकर उसे जीवित रखा। वरना प्यारे राम तपदिक के मरीज होकर कही अस्पताल मे एडिया रगडते होत।

मनोरमा चाय नाश्ता लेकर कमरे मे आ गयी। उसने मेज पर नाश्ता लगा दिया और प्यालो म चाय उडेलकर एक प्याला विवेक की ओर बढा दिया और दूसरी कुर्सी पर बैठ वह चाय की चुस्की लेने लगी। कुछ देर मौन रहा। बातो का क्रम शुरू किया विवेक ने—'प्रवीण कैसे मरी ? क्या हुआ था उसे ?'

'कुछ भी ता नही।'

'आत्महत्या ।'

नही, बिलकुल नही।' मनारमा चीख-सी गयी। 'उसकी गृहस्थी सुखी थी। उसका पति इजीनियर था। वह उसे बहुत प्यार करता था।'

मनोरमा का चेहरा काला पड गया। दुख की छाया ने उसके चेहरे की आभा क्षीण कर दी थी। वह दुखित स्वर मे बोली—'अपने को और अधिक छिपाये रखना मेरे वश की बात नही, विवेक ! मैं ही प्रवीण हू।'

विवेक हर्षित हो उठा। लेकिन उसने अपने मन की शका प्रकट की—'नाक-नक्श से तो मैं भी सोच रहा था कि तुम ही प्रवीण हो। मगर तुम ऐसी तो न थी।'

'कैसी थी ?' प्रत्युत्तर मे मनोरमा ने प्रश्न किया।

'तुम्हारा वह रग-रूप क्या हुआ ? मोटे काच का चश्मा क्यो लगाती हो ?' विवेक न उत्सुकता स पूछा।

'बहुत लम्बी कहानी है। क्या करोगे जानकर ?'

नही, जाने बिना मुझे चैन न मिलेगा।'

ता सक्षप मे इतना जान लो कि तुम्हारे से अलग होने के बाद मुझे बडी माता निकली, मर-मर के जान बची। देख रहे हा न य दाग। रग रूप के साथ माता मेरी बिनाई भी लेती गयी। बहुत कम दिखाई देता है। खैर ! मा-बाप ने पैसे के बल पर मेरा विवाह विजय बाबू के साथ कर दिया। वह कानपुर मे इजीनियर थे। बहुत मिलनसार, हसमुख और मृदुभाषी थे विजय बाबू। उन्होन मेरे रग-रूप के बारे म कभी शिकायत नही की। उनका कहना था, उन्हे अच्छी सूरत से अच्छी

सीरत ज्यादा पसन्द है। और वह मुझमे है। उन्होंने ही मेरा नाम प्रवीण से बदल कर मनोरमा रखा था।'

'क्यों ?' विवेक उसकी कहानी तल्लीनता से सुन रहा था। नाम बदलने की बात सुनकर उसने बीच में टोक दिया—'विजय बाबू को प्रवीण नाम पसन्द नही था क्या ?'

'कह नही सकती। लेकिन नाम बदलने के पीछे भी एक कहानी थी। जो उन्होंने मुझे साफ बता दी थी। उनके साथ कोई मनोरमा नाम की लडकी पढ़ती थी। उसे वह बहुत प्यार करते थे। उससे मगनी भी हो गयी थी। लेकिन एक दिन मनोरमा को हैजा हुआ और लाख प्रयत्न के बाद भी वह बचाई न जा सकी थी। वह मनोरमा को इतना प्यार करते थे कि उन्होंने स्पष्ट कह दिया था कि वे मुझे मनोरमा कहकर ही पुकारेंगे। मैंने भी स्वीकार कर लिया था। बस, उस दिन प्रवीण मर गयी थी और मैं मनोरमा बन गयी थी।'

'यह बात है।' विवेक ने ठडी सास ली और बोला—'लगता है विजय बाबू मनोरमा को बेहद प्यार करते थे। उसका गम भुलाने के लिए है उन्होंने ऐसा किया।'

'वह मुझे भी अगाध प्रेम करते थे। इतना प्यार कि शब्दो के घेरे से परे। मेरे तनिक से सिर दर्द पर सारी-सारी रात आखो मे गुजार देते थे।' मनोरमा अपनी दास्तान कहती जाती थी और साडी के पल्ले से आँखें पोंछती जाती थी। वह बोली—'पलक झपकते ही तीन वर्ष बीत गए। सुख-ही-सुख बरसा था हमारे चारों ओर। लेकिन कहीं दूर मेरा दुर्भाग्य हमे घूर रहा था। उसे हमारा सुख काटा-सा चुभ रहा था। कुछ दिनो से वे कभी-कभी पेट-दर्द की शिकायत करने लगे थे। दिनो दिन शिकायत बढती गयी। इलाज होने लगा मगर आराम आने के बजाय मर्ज बढ़ता ही गया। कई एक्सरे हुए लेकिन कुछ हल नही निकला। आखिर ऑपरेशन की नौबत आई। ऑपरेशन हुआ। कैंसर का फोडा निकला। डॉक्टरो ने भरसक प्रयत्न किए पर उन्हे बचा न सके। मेरी माग सूनी हो गयी।'

वह अपनी दारुण गाथा सुनाती हुई पूर्णतया गम मे डूबी थी। शब्द कठ में फस-फस जाते थे। कपोलो पर गगा-जमुना बह रही थी। विवेक भी दुखी हो गया। उसने कभी सोचा भी न था कि प्रवीण के साथ इतनी बडी दुर्घटना घटित हो सकती है। चाय का आखिरी घूट वह गले से न उतार सका और मनोरमा का भी आधा प्याला मेज पर पडा था। चीनी की मिठास कड़वी हो चुकी थी। मनोरमा अपनी करुण कहानी यहीं समाप्त कर देना चाहती थी लेकिन विवेक उसके बारे मे सब कुछ जान लेना चाहता था। उसने कुरेदा—'आगे क्या हुआ, प्रवीण ?'

'प्रवीण नही, मनोरमा।' मनोरमा ने उसकी भूल सुधार की—मैंने कहा था

न, कि प्रवीण मर चुकी है। मुझे मनोरमा शब्द से इतना मोह हो गया है कि अब प्रवीण कहलवाना कतई पसन्द नही। मनोरमा म विजय बाबू की याद समाई है। जब कोई मुझे मनोरमा कहकर पुकारता है तो लगता है कि विजय बाबू कही मेरे आसपास ही हैं।'

तब तो मैं भी तुम्हे मनोरमा कहकर ही पुकारूगा।'

'धन्यवाद।' वह कुछ लजा-सी गयी।

'अब बताओ, आगे क्या हुआ? नौकरी क्यो करनी पडी?' विवेक ने पुन जिज्ञासा प्रकट की।

'मुझ उनके फड और बीमे स काफी पैसा मिला। सोचा आगे की जिन्दगी आराम स कट जाएगी। मगर होता वही है जो ईश्वर को मजूर होता है। मैं सारा पैसा लेकर अपन मा बाप के पास आ गई। उन्होंने मुझे छाती स लगाया। भौजाइयो ने आदर किया। भाइयो ने असीम प्यार दिया। मैं कुछ दिनो के लिए अपने लगे घाव को भूल गयी। किन्तु मैं भ्रम म थी। उन लोगो के प्यार म स्वाथ निहित था। धीरे धीरे उन्होन मुझे लूटना शुरू कर दिया। अपनी मजबूरिया दर्शाकर मुझसे पसा एठते गए और जब मैं कुडक मुर्गी रह गयी तो सबको मेरी दो वक्त की रोटी भी भारी लगने लगी। भाभियो के ताने कलेजा चीरने लगे। भाई भी आखें बदल गए और पिताजी को मैं बोझ लगन लगी। केवल मा थी जो अब भी अकेले म मुझे छाती से लगाकर रो लेती थी—मेरी बच्ची, सारी उम्र पहाड-सी खडी है। कैसे दिन काटेगी।

'बहुत सोचन-समझन के बाद मैंने फैसला किया, लुट तो मैं गयी हू लेकिन किसी पर बोझ क्यो बनू? पढी लिखी हू। अपना भार उठाने की सामथ्य मुझ म है। नौकरी कर जीवन निर्वाह करूगी, लेकिन आश्रिता बनकर किसी की दया पर नही जीऊगी। बस एक रिश्तेदार की बदौलत मुझे यह नौकरी मिल गयी।'

अपनी करुण कहानी समाप्त कर मनोरमा खाली बतन समेटन लगी। विवक ने सिगरेट सुलगा ली थी और वह किसी गहरे चिन्तन मे डूबा था। मनोरमा की व्यथा ने उस अत करण की गहराई तक झकझार दिया था। उस तनिक भी भास नही हुआ कि मनोरमा बतन उठाकर कब की जा चुकी थी। धीरे धीरे कोई अतर्द्वद्व उसक मानस म जन्म ले रहा था।

उपसहार

विवेक को गाव म रहत कई महीने हो गए। उसका अधिकाश समय मनारमा के साथ गुजरता। कभी-कभी रात भी। कुछ ही समय म मनोरमा और वह सारे ग...

की चर्चा के विषय बन गए। लोग उगली उठाने लगे। यह बात नहीं कि विवेक अनभिज्ञ हो अथवा मनोरमा कुछ न जानती हो। लेकिन वे दोना इस सीमा तक आग बढ चुके थे कि एक-दूसरे के बिना रहना उनके लिए असम्भव-सा लगने लगा था। विवेक का अतिम निणय था कि वह मनोरमा को कल्पना के स्थान पर प्रतिष्ठित करेगा और मनोरमा भी इस परिणाम पर पहुची थी कि विवेक उसके लिए अनिवाय है। उसको जीवन-साथी की आवश्यकता थी। विवेक और उसकी स्थिति समान है। दोनो एक-दूसरे के पूरक हो सकते हैं। विवेक न अपना प्रस्ताव मनोरमा के सामने रखा तो वह सहज ही मान गयी। लेकिन माने नही उन दोनों के मा-बाप। मनोरमा के पिता की दृष्टि म विवेक अच्छा आदमी नही था। विवेक के उग्रवादी होने की खबर उडते-उडते उनके कानो तक पहुच गयी थी। विवेक पकडा जा सकता है। पुलिस के साथ मुठभेड म मारा जा सकता है। और विवक के पिता की जिद् थी कि जिस लडकी को वह अपनी पुत्र-वधू के रूप मे एक बार अस्वीकार कर चुके हैं, उसे अब बहू बनाकर घर म कैसे लाया जा सकता है।

विवेक और मनोरमा बड असमजस मे थे कि घरवालो को कैसे सहमत किया जाय। यदि वह सीधे सही रास्ते पर नहो आते तो और कौन-सा रास्ता अपनाया जाए। इसी उधेड-बुन म काफी समय गुजर गया लेकिन समस्या का समाधान नही मिला और अब तो मनोरमा की चिन्ता और भी बढ गयी थी। गाववालो की चर्चा की पुष्टि उसका उभरा पेट करन लगा था। उसन विवेक स अनुरोध किया कि यदि जल्दी ही कोई हल न निकला तो बहुत बदनामी होगी।

विवक न उस गभपात की सलाह दी। वह नही मानी। कहा—'विवेक, हम घर बसान की सोच रहे हैं अथवा बनन से पहले ही उस गिरान की तैयारी करें। यह पाप मैं नही कर सकती। पिछले जन्म के किए के फल तो अब भुगत रही हू और अब का पाप न जाने कब भुगतना पडे।'

'उपाय ?' विवेक ने उसी स समस्या का निदान पूछा।

'शहर स आए तुम्हें काफी समय हो गया है और इसी बीच हालात भी बदले हैं। अब पकडे जाने का भय नही। मुझे विश्वास है अब कुछ नही होगा। तुम शहर जाकर किसी नयी आबादी म रहन का प्रबन्ध कर लो। वहा तुम्हें कोई पहचानेगा भी नहीं। नौकरी मिल जाय ता मुझे बुला लना। वहीं हम विवाह कर लेंगे। विवाह हो जान पर सब विरोध स्वत समाप्त हो जायेंगे।'

विवेक की समझ म बात आ गयी। वह शहर म सीधा राजन के घर पहुचा। राजन और दीप्ति उसके लौट आन और विवाह करन की बात जानकर बहुत प्रसन्न हुए। केवल दीप्ति न इतना भर कहा— विवेक, तुम्हे बहुत पहले विवाह कर लेना चाहिए था। बच्चे बहुत छोटे थे। उन्हें अपनी नयी मां क साथ एडजस्ट होने म दिक्कत न होती। अब मुझे भय है कि बच्चे समझदार हो गए हैं। कहीं व

विमाता के साथ घुल मिल न पाये तो जीवन दूभर हो जाएगा।'

'मेरे बच्चे बहुत समझदार हैं।' विवेक ने अपने फैसले पर अडिग बने रहते कहा—'भाभी, मैंने बहुत सोच-समझकर फैसला किया है। मैं यायावर जीवन से तग आ गया हू। स्थायित्व लाने के लिए यही एक रास्ता मुझे सूझा है।'

'यदि ऐसा है तो ठीक ही होगा। तुम साहित्य मे फिर से जमने की कोशिश करो। हो सके तो कोई नौकरी तलाश कर लो। अकेले साहित्य से पेट नही भरेगा।'

इसके बाद मनोरमा भी शहर म बुला ली गयी और आय समाज मदिर मे उनका विवाह सपन्न हो गया। विवेक पुन साहित्य मे ठीक से जम नही पाया। उसे एक स्थानीय अखबार मे प्रूफरीडर का काम करना पडा।

विवेक रिटाय रहो गया। शहर मे रहने का कोई औचित्य न था। आय का कोई साधन न था। फड के पैसे से उसने अलका का विवाह कर दिया था। विमल शुरू स ही मनोरमा को मा के रूप मे स्वीकार नहीं कर सका था। इसलिए उसने अपना रास्ता अलग बना लिया था। वह किसी क्लाथ मिल मे बुनकर खाते म काम करने लगा था। बबलू की शिक्षा अधूरी रह गयी थी और वह बेकार घूमता था। शहर आकर मनोरमा ने आलोक को जन्म दिया था। वह अभी बच्चा था। लेकिन शहर के बिगडे बच्चो की सगति म रहकर वह भी निकम्मा और आवारा बन गया था। स्कूल जाने के बजाय वह सिनेमा के टिकटो की कालाबाजारी करना ज्यादा पसन्द करता था। विवेक ने अपनी गहस्थी को यो छिन्न भिन्न होते देख गाव मे रहने का निश्चय किया। उसके कानो मे पिताजी के शब्द गूजते थे—'विवेक, तुमने गृहस्थी बसा ली है। चलो, अच्छा ही हुआ। तुम सुखी रहो। इसी मे मेरी आत्मा प्रसन्न है। तुम्हारी मा कुछ ही दिनो की मेहमान हैं और मैं भी पका पान हू। किसी दिन भी टूट सकता हू। लेकिन मेरी एक बात याद रखना। बाप-दादा की जमीन के इन टुकडो को बेचना नही। जब तुम्हारे कोई काम नही आएगा तो ये तुम्हारे सहारा होंगे। शहर ने भले ही तुम्हें शरण दे दी हो पर अपनत्व गाव ही देगा।'

और इसके बाद वह तभी गाव गया था जब पिताजी के स्वगवासी होने का तार उसे मिला था। पिताजी का कथन शत प्रतिशत खरा उतरा। आज जब वह चारो ओर स हताश व निराश है तो गाव ही उसकी आशा की किरण था।

उस आशा थी कि जिन लोगो से सदा उसका वास्ता रहा है उसकी बीमारी

को सुनकर अवश्य आयेंगे। साहित्यिकों राजनीतिकों सभी से तो उसकी घनिष्ठता थी, लेकिन कोई नही आया। आया केवल विमल उसकी बीमारी का तार पाकर। वह अन्दर के कमरे म सो रहा था और अपने अन्तिम समय मे विवेक ने मनोरमा को उसे बुलाने को कहा था। वह विमल को बुला लायी। विवेक ने करुण दृष्टि स उसे देखते हुए कुछ कहना चाहा। मगर जुबान नहीं खुल सकी। उसकी आखो म विवशता तैर रही थी। उसकी कनपटी पर आसुओ की लकीर बन गयी। कुछ देर बाद एक जोरो की हिचकी आई और उसकी गदन एक ओर लुढक गयी। मनोरमा चीख मारकर उसके पैरो से लिपट गयी। विमल रो नही सका। उसकी आखें खिडकी से बाहर दूर काले आकाश म अटकी थी। एक तारा टूटकर दूर तक चादी की लकीर बना गया था।

घुत्ती

गोधूली बेला। बद किवाड खुल गए। कुछ आधे, कुछ सौपट। पकी उम्र की औरत गली म उतर आयी। नयी नवेलिया उढके किवाडो के बीच से झाकने लगी। गली के हर नुक्कड पर आदमियो के ठठ जुड गये। हडकप है, शोर नही। सिफ फुसफुसाहट। हर कोई दबी जबान से कह रहा ह—'यह क्या किया ? एक लडका, और वह भी जालिमो के हवाले कर दिया। अजीब औरत है।'

घुत्ती। बीच गली म खडी थी। बौराई सी। फटी फटी आखें, छितरे बाल। खुला मुह। किसी से कोई वार्तालाप नही। बस वह देखती है, देखती रह जाती है अपने चारो ओर बिखरे चेहरो को। मानो मुह मे जबान ही नही।

अजीब औरत, अजीब नाम—घुत्ती। शब्दकोश लेकर भी अथ ढूढो ता न मिले। ऐस ही होते हैं कुछ हमारे गावदी नाम। फिर भी शब्द तो है ही। चाहे देखन मे निरथक लगें चाहे साथक, हैं तो भाषा के जनक। बिना शब्द भाषा हो नही सकती। कुछेक शब्द दखन म निरथक लगत ह लेकिन होते हैं अथवान। ऐसा ही है घुत्ती शब्द। यह मच्छर की एक उपजाति का नाम है। जो मच्छर म बहुत छोटी होती है। इसके काट मे मच्छर काट से ज्यादा जलन होती है। पहलवान आदमी के मुह से भी सी' निकले बिना नही रहती। कुरुप्रदेश मे घुत्ती से सबधित एक किवदती प्रचलित है—'जब घुत्ती का काटा आदमी 'सी' करता है तो वह जोरो स हसती है। कहती है यदि 'सी' न की होती तो जिस्म के पार निकल जाती।'

घुत्ती भी बिल्कुल ऐसी ही है। बिना बालत को छेडकर चलती है। बातें उसकी अणिदार होती हैं। असली घुत्ती चाहे आदमी के पार न निकले पर उसके बोल अवश्य पार हो जात हैं। चाची रामबतिया को भर मोहल्ले उसन चारो खाने चित किया— चाची, छाज बोल्लै सो बोल्लै छलनी क्या बोल्ले, जा मे बहत्तर छेक। मन्न छिनाल कवे है, तू कन्हैया क सग पीपल वाली कियारी म क्या सान

खेल री थी ?'

इसी किंवदंती के आधार पर गांव वालों ने उसका नाम रखा है—घुत्ती। जो अब चलन में इतना आ चुका है कि शायद ही गांव का कोई आदमी उसका असली नाम जानता हो। मां-बाप भी कभी भूले बिसरे ही उसका नाम लेते हैं—परसदी।

परसदी उर्फ घुत्ती का जन्म उस अभागे घर में हुआ था, जिसमें हर समय काल की काली छाया स्थायी डेरा डाले है। एक-एक करके उसकी तीन अभागी बड़ी बहनें वैधव्य का दुखड़ा झेल रही थीं। बंजारा-सा पट्ठा भाई भी पिछले वर्ष विधवाओं में एक और अदद जोड़कर भगवान को प्यारा हो गया था। बाप इन जवान मौतों से इतना टूटा कि एक रात वह भी पुच्छल तारे की तरह अदृश्य हो गया। मां दिलेर निकली। 'हरीच्छा' कहकर सब सह गयी। तब घुत्ती छः वर्ष की थी।

घर की व्यवस्था भंग हो गयी। कमाऊ कोई रहा नहीं। घुत्ती के हाथ में डंडा देकर मां सुबह-अलसुबह गाय भैंसों के पीछे कर देती। यहीं से शुरू होता है घुत्ती का अलमस्त जीवन। गांव के अन्य चरवाहे उसके संगी-साथी हो गये। वह उनके साथ दिनभर ढोर चराती। 'कीर-काटा' और 'काय-पत्ता' खेलती।

जंगल के खुले वातावरण में उसने उन्मुक्त हवाओं के साथ बहना सीखा। दिन भर तितलियों के पीछे दौड़ना और पक्षियों की तरह चहकना सीखा। अमराई में कूकती कोयल की नकल उतारना सीखा। कभी वह भैंस की पीठ पर बैठकर जोहड़ की सैर करती तो कभी झीड़ के कटीले पेड़ पर रखे घोंसलों से चिड़ियों के अंडे-बच्चे निकाल लाती। एक बार तो वह बांबी में हाथ डालकर सांप के अंडे निकाल लायी थी और मां ने उसकी खूब धुनाई की थी। शरारतों का दूसरा नाम था—घुत्ती।

वह खेल में इतनी मस्त हो जाती कि उसे पता ही न रहता उसके पशु कब किस के खेत में घुस गये। यदि मालिक ने देख लिया और घुत्ती को ताड़ित किया—'ए घुत्ती दिखै ना है। तेरे ढोरों ने मारा खेत उजाड़ दिया' तो घुत्ती तपाक से उत्तर देती—'छगन चच्चा क्या हुआ, जो गां ने दो मूं मार लिये। हम तो भगवान ने उजाड़ राख्या है।'

छोटे मुंह बड़ी बात सुन शिकायत करने वाला चुप रह जाता और हृदय दया से द्रवित हो जाता। लड़की ठीक ही कहती है भगवान ने उन्हें उजाड़ने में कौन कसर छोड़ी है। वरना इस नन्ही बालिका का दिन भर पशुओं के पीछे भटकने की क्या जरूरत थी? उसका बाप कमला कभी गांव का सम्मानित व्यक्ति था। आज उसी घर की स्त्रियां दूसरों के घर पीसने पीसकर गुजर कर रही हैं।

ऐसी बात न थी कि गांव में सभी ऐसे समझदार लोग थे। ऐसे भी थे, जो घुत्ती

की कनपकडी कर उससे अपनी सात पुश्तो का तपण सडी-सडी गालियो से करवाते थे। कभी-कभार शिकायतो का पुलिंदा घर भी पहुच जाता—'चची मगली, तरी यो लौंडिया भात बिगड गयी हैं। एक तो खेत मे नुकसान करवा दिया, ऊपर स उल्टी-सुल्टी बके है।'

बस, फिर बेचारी घुत्ती की ठुकाई होती। लेकिन घुत्ती सबको ठेंगे पर मारती। किसी की परवाह न करती। थोडी देर रो-धोकर फिर वैसी-की वैसी। मा मे वही मनुहार—'मा, म नैं भूख लग री है। रोट्टी दे दे न।'

मा का ममत्व उमड आता। उसके रूखे और उलझ बालो की चिकट हुई लटा मे हाथ फेरती हुई कहती—'रार्णी बेट्टी, बुराई ना लाया कर। डगरा का धियान राख्या कर। काई का नुकसान होगा तो कयेगा ई।'

घुत्ती चुपचाप सुन लेती। मानो मा के शब्द उसके काना तक पहुचे ही नही और मा भरी-भरी आखें लिये छीक से रोटियो की बोहिया (डलिया) उतारने बढ जाती।

घुत्ती रात की बात रात के सग भूल जाती। अगले दिन फिर वही बेलौस उच्छ खल जीवन। टिड्डी के पैरो मे धागा बाधकर उडाना। किसी बगीचे मे घुसकर कच्चे-पक्के फल झाड लेना। सूली सरीखे पेडा पर गिलहरी की तरह चढ बठना। वह मौत और चोट दोनो मे बेखबर थी। बुराई धुनाई-कुटाई सबसे वपरवाह थी वह। करना वही, जो मन मे आये। घुत्ती जगल मे रह, वन क्या रूप धारण कर रही थी। सामाजिक मान मर्यादाए उसे छू न पा रही थी।

एक दिन वह मा के लिए झडबेरी के मीठे मीठे बेर कुर्ते के पल्ले म भरे पशुओ के पीछे चली आ रही थी। जब वह गाव की हद म घुसी तो चौधरी धनपत के आवारा लडके गणपत की चाडाल चौकडी रास्त के किनारे सिगरेट की डिब्बियो के ताश स जुआ खेल रही थी। गणपत की निगाह पल्ले म बेर भरे आती घुत्ती पर पडी। उसकी आखें घुत्ती की नगी टागो पर सरसराती जोडो तक पहुची। वह गदन टेढी कर नीचे झाकन लगा। घत्ती न उस यो झुका देख कुछ रव से कहा—'त क्या देखे है रे। दूसरी घर खूटी पर धरी ह। मा न कल इ नई सी क दी है।'

लेकिन अगले क्षण ही वह अचकचा गयी। गणपत की सारी मडली खी खी करन लगी। घुत्ती की पुरानी चड्ढिया फट गयी थी और मा न अपनपुरा ओढ्न म स थोडा कपडा निकालकर उसकी दो चड्ढिया सिल दी थी। वह सुबह एक चड्ढी पहनकर पशु चरान गयी थी। दोपहर म भस नहलाकर वह भी नहाइ थी। भीगी चड्ढी उसन झाडो पर सुखा दी थी। कुर्ता काफी नीचा होन के कारण वह चडढी सूख जान पर पहनना भूल गयी थी और दिन भर शरारतो म खोई रही थी। अब लडको की खिखियाहट म उस झाडी पर सूखती चड्ढी की याद आइ।

नगी होने के अहसास ने उसे पानी-पानी कर दिया और घट मे कुर्ते का पल्ला ऐसे नीचे छोड दिया, जैस कभी नूरजहा ने कबूतर उडा दिया था। और नूरजहा की भाति ही बडी मासूमियत से कहा—'मा से कऊगी, मन्ने छेडे है।'

शैतान लडको ने जोरों का ठहाका लगाते हुए समवत स्वरो मे गाना शुरू किया—'धुत्ती, बडी उत्तौ, काटे जैसे कुत्ती।'

वह रुआसी हो अपने पशुओ की पीठ पर वहा से जल्दी खिसकाने को डडा बरसाने लगी।

घुत्ती कलियाने लगी थी। वह खिलकर वनफूल बनने जा रही थी। गणपत भी बिजार की तरह सडियाने लगा था। जब वह किसी कली को फूल बनत देखता तो गल्लहारने लगता। खुर खोदने लगता। गाव के लोग दबी जबान म तो उसकी निंदा करते, किंतु उसके बाप स कुछ कहते न बन पडता। गाव मे एक चौधरी धनपत का ही तो घर है, जा सारे गाव का सहारा था। फागुन के महीन म जब लोगो के चूल्ह रमजान से रहने लगते हैं, तब चौधरी की बुखारी उनके लिए अनाज उगलने लगती है। सवाए पर अनाज तकसीम किया जाता है, जो फसल में डयोढा और दूना तक वसूला जाता है। भला अपने अन्नदाता के विरुद्ध कौन मुह खोले।

जगल की खुली हवा और मौसमों की गर्मी-सर्दी से घुत्ती के अग रग सब तबियाने लगे थे। वह गणपत की भूखी आखो का केन्द्र बनी हुई थी। वह जब-तब घुत्ती का रास्ता रोककर खडा हो जाता। छेडता—ए घुत्ती, तने यिहा चोट कूकर लगी। बडी सूज री है।'

वह कुर्ते मे छिपे छातियो के उभार को छूता।

'पियगा रे? मुहफट घुत्ती तड से जवाब जडकर अपने रास्ते चलती बनती और गणपत होठ चिचोडता रह जाता।

घुत्ती समझ स बाहर थी। उसकी निश्छल हसी और मुहफट सवाल जवाब किसी भी आदमी को भ्रमित करने के लिए काफी थे। वह गोरी भाभी से सुहागरात के रहस्य जितनी आसानी स उगलवा लेती, उतनी ही सरलता से दीना को भी लज्जित कर जाती—ऐ दीना, चार साल से साडनी पाले है। मुस्सी की बच्ची ना हुयी। मरद बच्चा तो एक रात मे लुगाई की मसक भर देवे है।

उसके बेलौस व्यवहार न गाव के कितने ही नौजवानो को विचलित किया। किंतु हकीकत जब सामने आती तो उनके गालो से लपट सी निकलती होती और घुत्ती के पजे की छाप छपी होती। गजब का हाथ था उसका। ऐसा लगता मानो लोहे की छड जड दी हो मुह पर। जबडे की हडडी चरमरा जाती। लेकिन बेहया

गणपत तब भी छेड़े बिना बाज न आता। एक दिन खुल्लमखुल्ला कह ही दिया—'चुम्मी देगी ?

यल्ले (यह ले)।' और एक झन्नाटेदार थप्पड उसके जबडे पर पडा। वह लडखडाकर गिर गया। उस दिन से उसकी बायी आख की रोशनी धीरे धीरे क्षीण होती चली गयी।

ऐसी पाच-सात घटनाओ के बाद घुत्ती का एक दूसरा नाम भी प्रचलित हो निकला—'मरखनी गाय'। जिन लबारो की लार उसे देखकर टपकने लगती थी, अब उसे आता देखकर वे रास्ता छोड जाते हैं—भागो सालो, मरखनी गा' आ री है।'

घुत्ती का चरित्र विचित्र था। वह बर्फ की चट्टान की तरह उज्ज्वल और कठोर थी। लेकिन किसी के दुख की तपिश म गलकर पानी हो जाने वाली। नावल्द गगा चाचा क आखिरी समय मे उसने जो सेवा की थी सारा गाव जानता है। गगा का कोई न था। बेचारा अकेला झोपडी मे पडा रहता था। महीनो बीमार रहा। बीमार भी ऐसा कि खाट काटनी पडी। झोपडी दुर्गंध से भरी रहती थी। पास-पडोस का कोई भी झाक्कर न देखता। लेकिन घुत्ती ही एक ऐसी थी जो दोनो समय उसकी झोपडी मे झाड़ू लगाती। उसका गद उठाकर फेकती। मैले मे लिथडे कपडो को तालाब पर धोकर लाती। गाव का कोई नीम हकीम नुसखा बना देता तो अपने घर से अनाज चोरी कर काशीराम पसारी के यहा स दवा ले आती। घोंट-पीस और उबालकर उसे पिलाती। मा को चोरी का पता चलता तो हाय-हाय' करके रह जाती—'अरी निरभाग, अपने खाणे कू ना है, तू जग लुटाती फिरे है।'

'मा तुई तो कँवे है, जा का कोई नी, वा का भगवान होवे है। बिचारा कितणे दिनो से मरू-मरू कर रया है। तेरे भगवान ने तो वाकी ना सुणी। मन्ने सोच्या, जब लो भगवान सुणेगा बिचारा यू ई सडता रैगा। तब तलक मैं ई वाकी सवा-टैल क्र दिया करू।

वह तो मनुष्य था, घुत्ती तो जानवरो की सेवा करने तक से न चूकती थी। झबरी कुतिया की सेवा भी उसने इसी तन्मयता स की थी। लेकिन बेचारी झबरी बच न सकी और चार पिल्ल' को रोता बिलखता छोड सौर से-गौर मे पहुच गयी थी। घुत्ती ने पिल्लो को रूई की बत्ती से दूध पिलाकर पाला था। आज जब वह जगल मे निकलती है तो चार कुत्ते उसके इद-गिद चलते हैं। देखने मे ऐसा लगता है, मानो घुत्ती कोई शिकारी हो। लेकिन घुत्ती शिकारी नही, एक ममतामयी युवती है। जिसके मुलायम मास को खाने के लिए गणपत जैसे अनेक शिकारी घात मे रहते थ। अब और ज्यादा देर किये बिना मा ने ढोर-डगर बेचकर देमा को उसका रखवाला बना दिया था।

देसा घुत्ती को पाकर निहाल हो गया। घुत्ती मस्कती और गठे शरीर की धनी थी। अढाई मन की गड्डुल्ली का जगल स लेकर ऐसे लचकती चली आती थी, माना रूई की गठरी उठाये हो। अपने मद के साथ दिन-भर खेत-खलिहान मे जुटी रहती। साझ पडे घर लौटती। खाना बनाती। देसा को भरपेट खिला अपने पेट मे रूखे-सूखे टुकड डालती। हुक्का ताजा कर, चिलम भरकर देसा की खटिया के पास रख देती। फिर घटो उसके पैर दबाती। सिर की मालिश करती। देसा सो जाता ता सहज म उसकी करवट म एसे पसर जाती, जैसे कोई मा बच्चे की नींद खुल जाने के भय से हौले से बराबर म लेट जाती है। भोर होने तक दोनो हारे-थके बेसुध साये पडे रहते। एक सुखी ससार था उनका। लेकिन दुर्भाग्य की काली छाया न घुत्ती का पीछा न छोडा था। ठीक उतनी ही उम्र मे, जितनी म उसकी बहनें और भाभी रडापे की चादर से ढकी गयी थी, घुत्ती भी विधवा हो गयी। देसा को कुल तीन दिन बुखार आया। सिरीसाम पड गया। देसी इलाज-माजरा सब बेकार गया। गाव मे कोई डॉक्टर था नही। शहर ले जाने की तैयारी से पहले उसन अगले लोक जाने की तैयारी कर ली थी।

घुत्ती अकेली रह गयी, सतमासा गभ लिये। मा की देहली पर जाना उसके अह न गवारा न किया। मा ही कौन सुखी थी। पहले ही विधवा आश्रम बना हुआ था उसका घर। लेकिन इस अहवादी युवती का गव खव करन के लिए अपन ही गाज गिरान के उतावले हो उठे। उसका जेठ हसा उसका गम और नम गोश्त खाने का लालायित था। जेठानी की जुबान की कैंची उसका कलेजा कतरने पर उतारू थी। बाड ही खेत को खान लगे तो एसे खेत का क्या हश्र होगा। मगर मर्दानी घुत्ती न जीवन मे कभी हार नही मानी थी। वह अपन पति के घर मे अकेली रहन लगी। बटवारे म उसे पाच बतन और पाच बीघे जमीन के अलावा कुछ नहीं मिला। लेकिन घुत्ती ने घुटने नही टेके। बस एक ही आस उसे सबल देने के लिए काफी थी—उसकी कोख।

घुत्ती का कोखजाया सोम दसवी पास कर निकट के कस्बे के इण्टर कॉलेज मे जाने लगा था। मैंटिक म उसने प्रथम श्रेणी पायी थी। सरकार की ओर स वजीफा मिलने लगा था। घुत्ती न गाव वाला के धान कूटकर, पीसने पीसकर उस खूब पढान की प्रतिना की थी। वह कहा करती थी—'मेरा लाल बालिस्टर बण के अनयाव के खिलाफ लड या करगा। वास्तव म अपढ-गवार घुत्ती ने सोम को बचपन से निर्भीक और एक नक इसान बनान की कोशिश की थी। लोक-कथाआ म रचे बसे इतिहास के वीर पुरुषो की कहानिया ही उसकी आदश थी।

साम के कॉलेज मे दाखिला लेन से उसे अपनी आशाए फलीभूत होती लगी

लगी थी। वह पेट काटकर भी सोम को कमी न होने देती। इधर सोम को कॉलेज की खुली हवा का वातावरण मिला। उसकी मित्र-मण्डली बढने लगी। मित्रों के साथ उसके सम्बन्ध दूसरे लोगो के साथ बढने लगे। पहले वह नित्य घर लौट आता। कभी-कभार उसके साथ एक-दो अन्य लडके भी होते। धीरे-धीरे वह रात भर घर स गायब रहने लगा। मा पूछती तो वह जवाब दे देता—'इम्तहान सिर पर हैं। वह दोस्तो के साथ रुककर पढाई करता है।' घुत्ती चुप रह जाती। एकाध बार वह फालतू खाना बनवाकर भी ले गया था।

तीसरे पहर म रुक रुककर गोलिया चलने की आवाज आ रही थी। सारा जगल पुलिस न घेरा हुआ था। उसका कहना था कि गन्ने के खेतो म कुछ नक्सली छिपे हैं। सोम उनके लिए कभी-कभार खाना ले जाया करता था। मा को उसने समझा दिया था कि मा, वे कोई गलत लोग नहीं हैं। व अन्याय और शोषण के खिलाफ सघर्ष करने वाले लोग हैं। मा की सहानुभूति भी उन लोगो के साथ हो गयी थी। जैसे गोली चलाने की आवाज उसके कानो तक पहुचती, उसका कलेजा धक से रह जाता। न जाने किसका लाल खपा होगा।

साझ पडने लगी। वह अपने घर की देहली पर उदास बैठी थी। सोम सुबह बिना खाना खाये जल्दी आने का कह कॉलेज चला गया था। लेकिन वह अभी तक नही लौटा था। उसके मन मे बार-बार किसी अनिष्ट की शका उठ रही थी। कही सोम भी तो पुलिस के घेरे म न फसा हो। तभी सामने स एक बीस इक्कीस साल का युवक दौडकर आता हुआ दिखा। उसके शरीर से खून बह रहा था। दौडने म उसे काफी तकलीफ हो रही थी। वह घुत्ती के सामने आ खडा हुआ—'मा बचाओ' कहता हुआ वह सीधा घर के अदर चला गया। घुत्ती को पहचानने म देर न लगी। यह युवक कई बार रात मे सोम के साथ आता था और पौ फटने स पहले चला जाता था। घुत्ती बिना बोले उठी और उसे भैंस के लिए एकत्रित की गयी पुआल म छिपाकर पुन निर्विकार दरवाजे पर आ खडी हुई। तभी पीछा करने वाले चार सिपाही भी वहाँ आ धमके।

'ए इधर कोई लडका आया है?' उन्होने निहायत बदतमीजी स पूछा।

घुत्ती फटी फटी आखो म उन्हे देखती रही। बोली कुछ भी नही।

'जवाब क्यो नही देती? या दीदे फाडे क्या देखती है। [illegible] क्या [illegible]' सिपाही [illegible] खीचकर बोला।

घुत्ती फिर भी चुप रही। उसकी चुप्पी ने [illegible] का काम किया। सिपाही [illegible]—हरामजादी, [illegible] मानी [illegible] थप्पड सीधी तरह नही बताएगी।

रामाधार टुक्डी के नायक का आदेश पा रायफल का कुदा आगे कर घुत्ती की ओर बढा। घुत्ती ने इस विकट स्थिति स उबरन का एक ही उपाय सोचा, क्यो न उन्हें कोई चकमा दिया जाये और उसन कस्बे से आन वाले रास्ते की ओर हाथ का इशारा कर दिया। पुलिस की टुक्डी बिना समय गवाए आसामी का पकडने के लिए उस ओर दौड गयी।

सोम का छमाही इम्तहान का आखिरी पर्चा था ओ" उस 'रेड' की तनिक भी सूचना नही थी। वह पर्चा देकर अपने कुछ दास्तो के साथ वही देर तक रुक गया था और अब गाव लौट रहा था। पुलिस का आता देखकर वह थोडा घबरा गया और रास्ता छोडकर खेतों की ओर जाने लगा।

'हाल्ट, वर्ना गोली मार दी जायेगी।' पुलिस ने उस चेतावनी दी।

सोम रुक गया और पकडा गया।

सारे गाव मे खलबली मच गयी। सब घुत्ती को बु"ा भला कह रहे थे। एसी भी कही मा होवे है, जो अपने इकलौत पूत को पुलिस के हवाले कर दिया, किन्तु घुत्ती अब भी कुछ नहीं बोल रही थी। उसकी आखें बार-बार अन्दर पुआल तक जाती और लौट आती।

शोर सुनकर पुआल मे छिपा वह लडका बाहर निकल आया। खून बह जान से वह निढाल हो रहा था। सब लाग उस देखकर हैरान रह गये। वह क्षीण स्वर में बोला—'मा, तूने यह क्या किया। मेरे लिए मेरे भाई की आहुति दे दी।'

घुत्ती बोली फिर भी नही। वह स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरकर अपने आचल से उसके जख्म पर बाधने के लिए पट्टी फाडन लगी।

मरने के बाद

दिन की पलकें खुलती हैं और अड्डे की अलसाई जिंदगी म कुलबुलाहट हान लगती है। दारू की खुमारी मे सूजी आखें लिये ड्राइवर-कडक्टर बसो की छत पर हाडी-सा मुह फाडते हुए दिखाई देन लगते हैं। फिर मुह की चिमनियो से बीडी का कसैला धुआ उगलत, दिशा-मदान से फारिग होने के लिए अड्डे की इकलौती टट्टी की लाइन मे जा खडे होत हैं, जिसका मजर वेश्या के कोठे जसा होता है। एक बाहर निकलता ह दूसरा घुसता है। यदि किसी को निकलने मे देर लग जाती है तो लाइन मे से कोई मसखरा पुकारता है, 'अबे अफीम खाई है क्या ? या कोठरी किराये पर ले ली है ?'

वह पहली किरण के साथ अडडे के मेन गेट की गिरी हुई दीवार पर आ बैठता है दूसरो की तरह काम की तलाश म। अगर इस ढही दीवार को इन लोगो का रोजगार दफ्तर कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। सारे बेकार ड्राइवर-कडक्टर सुबह आकर इस पर जम जाते हैं और नम्बर पर जान वाली हर बस को ऐसी ललचाई दृष्टि मे देखते हैं, जैसे गौरीशकर मदिर के सामने कगले किसी दाता की टोकरी को। किसी ड्राइवर या कडक्टर न छुट्टी कर ली तो किसी एक की किस्मत का चाबी लग गयी। वरना वही बैठे बस म चढन वाली महकती खूबसूरत कलियो पर फब्तिया कसकर दिले-नादान को बहलाते रहते है।

जैस-जैसे दिन जवान होता ह, उनकी आशाए बुढियाती जाती है। धीरे धीरे ढही दीवार लावारिस लाश की तरह बिछी रह जाती है। यह क्रम मैं काफी दिनो स देख रहा हू और देख रहा हू उसे—सबसे अलग-थलग। वह अपन साथियो के फूहड मजाक म शरीक नही होता, न ही बसो को हड्डी की तरह ललचाई नजर से देखता। 'जिसे जरूरत होगी खुद बुलाएगा' के विश्वास के साथ वह सबकी ओर कमर किये कोई मैगजीन अथवा नावेल पढता रहता। कई ड्राइवर-कडक्टर उसे छेडते हैं, 'शायर साहब ! कोई शेर-वेर हो जाये।'

और वह चुभती नजरो से छेडखानी करने वाले का निमेष-भर घूरकर फिर स किताबो की दुनिया मे खो जाता है।

किसी का आज, किसी को कल काम मिल ही जाता है। लेकिन मैं उसका यहा इन्ही मूड म बैठे रहना महीनो त दख रहा हू। उन कोई नही पूछता। मानो मोटर वालों की बिरादरी से उसका बहिष्कार कर दिया गया है। अक्सर बस चालका की उसक बार म टिप्पणिया भी मेरे सुनने म आती हैं, 'अरे यह क्या कडक्टरी करेगा। किताबों और शेरबाजी म लगा रहगा और बस रिफाए आम म चलनी रहगी।

एसा न होता तो बाप की कमाई ठिकान लगाता क्या? भूखा मरन लगा ता चला आया मोटर वाला म।' दूसरा टिप्पणी का अनुमादन करता है।

मैं दखता हू, धीर धीरे बेकारी के चिह्न उसक चौखट पर उभरन लग है। दाढी दूब सी लहलहाने लगी है। सूखे बेतरतीब बाल हवा म फडफडाकर शिकायत करत है कि हम तल की प्यास है। कपडे पहले मले और बाद म चीकट होन लगे हैं। साबुन खत्म हुए कई सप्ताह हो गय हैं। यही नही, अब ता चेहरा भी रूखा हो चला है। पट की अतडियो न जिस्म की चर्बी चाटनी शुरू कर दी है। गाल पिचकन लगे है और आखें बटर-बटर करन लगी है। फिर भी उस किसी म काई शिकायत नही है। वही नियम वही क्रम वही टूटी दीवार और वही टूटी आशाए।

वह दीवार छोडकर उठता है। चलता है, दाए-बाए लहराता हुआ गिरा कि अब गिरा और कुछ कदम चलन क बाद धम्म स बठ जाता है। मैं अपने को रोक नही पाता हू। उसके पास पहुचता हू। पूछता हू, 'क्या बात है, बीमार हो?

ठीक हू।' वह मेरी आर आखें उठाता है जो जल रही थी।

उसका हाथ छूता हू ता मेरे मुह से निकल जाता है, 'अरे! तुम्हे तो बहुत तज बुखार है!'

हाा। वह उपक्षा बरतता है। मैं खीझ जाता हू। फिर भी औपचारिकतावश कहता हू, 'तुम्ह आराम करना चाहिए।'

'वह तो मैं रोज हो करता हू। दखत नही, महीनो से इसी दीवार पर बैठा आराम कर रहा हू।'

उसकी वाक्पटुता पर मुग्ध होकर मैंने प्रश्न किया, 'क्या करते हो?

एश।' उसन छोटा-सा उत्तर उछाल दिया। आगे क्या पूछू?

मैं अवाक रह गया। एक क्षण रुककर फिर पूछता हू, 'खात कहा से हा?

अल्लाह न मुफ्त की न्यामतें बख्श रखी है। हवा खाओ, रोशनी खाओ और ठडा पानी पिओ। कोई पाई-पसा नही।

तुम कब तक जिदा रहाग?

'कयामत तक।'

कया म त?' म मह बनाए उसकी ओर देखता रह जाता हू।

'माफ करना शायद कयामत की बात पल्ले नही पडी।'

'ऊ हू!

'हुजूर! मैं मर जाऊगा, ठीक!'

हू।'

'लेकिन मेरी जगह इस दीवार पर दूसरा काई मेरा भाई आ बैठेगा। इसके बाद तीसरा, चौथा, पाचवा और यह सिलसिला कयामत तक बरकरार रहेगा।' वह विद्रूप स मुस्कराया। फिर हसी समेटता हुआ गुनगुनाने लगा, 'पोथी पढ़-पढ जग मुआ पडित भया '

माना मेरे मुह पर उसने थप्पड जड दिया हो। मैं खिसियाया-सा रह जाता हू फिर भी मेरी सहानुभूति उसके साथ बनी रही—गजब का जीवट है। इस हालत मे भी मस्त! दाद देने को जी चाहता है। मगर अगले क्षण ही वह तमाचा मुझे तिलमिला जाता है, जो उसने अभी मेरी कनपटी पर रसीद किया था। मन मे आया कि मरने दू साले को और जा बैठू अपने दफ्तर मे। लेकिन तभी मेरे अन्दर बैठा कोई दूसरा बोल उठा, 'बुरा मान गए भइये! दुखी आदमी की सिर्फ जुबान चलती है। अगर उस पर भी ताला डाल दोगे तो वह जिंदा लाश भर रह जायगा। यह बेचारा क्रोध का नही, क्षमा का पात्र है। देखते नही, हफ्ता स पवन आहारी होने के कारण चलने से भी मजबूर है।'

मेरी आखें नम हो आयी। होठो पर बलात् हसी लाता हू और कहता हू, 'फिलासफी की बातें करते हो, यार!'

'फिलासफी किस चिडिया का नाम है, अपन नही जानते। वैसे इतना जानना हू, हर वायु सेवी को लोग या तो फिलासफर समझते है या फिर पागल। चाहे वह मेरे जैसा खुद्दार हो, या कोई कोपीनधारी।'

'चलो, खाना खा लो।' मेरे मुह स अनायास निकल गया।

खाने की गुजाइश रही ह। हवा मे पेट ठसा है।' उसने मेरी ओर एसे देखा, माना मैंने उसके अहम को ठेस पहुचाई हो। उसकी आखें साफ कह रही थी कि वह भिखारी नही, किसी की दया बटोर कर खाना उसकी फितरत नही। वह घुटनो पर हाथ रखकर खडा हुआ और बोला, शायद आपको तरस आ रहा है। मुझे खाने की नही, काम की जरूरत है। दिलवा सकते हो?

मैं निर्वाक् रह गया। जो स्वय उसाखियो पर टगा हो वह दूसरो का क्या सहारा देगा? खुद मुझे यह नौकरी मामाजी के साले के ससुर की बदौलत मिली थी। मैंने गर्दन ताम ली। शायद वह मेरी विवशता चीन्ह गया था। बोला, नही दिलवा सकते न?

मैं चुप। बोला फिर वही, 'साले रोटी खिलाने वाले 'कण' मिलत हैं, पर काम के नाम पर सबकी नानी मरती है।'

एकाएक उसकी आखो मे दहशत उतर आई। बडबडाया, 'सबको देख लूगा सालो को। नौकरी दिला नही सकत हैं, छीन सकत हैं। दो साल से अच्छा भला नौकरी कर रहा था। हरामजादे जुम्मन ने मालिक के पास लुगाई भेजी और जब मालिक न उसकी लटकती हुई थैलियो का बखूर कर आखें तरेरी कि मैं न उल्लू के पट्ठे को नयी गडडी चलाने को दी और मेरे पास भेज दी है यह सैंकिड हैंड, तो उसने दूसरे दरवाजे से नयी-नकोर इम्पाला' दाखिल कर दी—नईमा। अपनी अनार की कली-सी बहन और वह हरामी मेरी जगह तैनात हो गया।

'समझा।' पूरी बात का जायजा लेते हुए मैं बोला।

'खाक समझे!' खीझा-सा वह लडखडाता हुआ आगे बढ गया। कुछ दूर जाकर वह पलटा और जेब म हाथ डाल कर बोला 'बाबू साहब लाख दुखो की सिफ एक दवा है।'

और उसने जेब से हाथ निकाल कर दूर से ही मुट्ठी खोलकर दिखाई। हथेली पर ढेर-सी टिकिया रखी थी। वह फिर से फीकी हसी हसता हुआ चन्नू चाय वाले की दुकान की ओर बढ़ गया। जहा वह उधार म गम पानी पीकर पेट की सूखी अतडियो को मुलायम किया करता था।

कई सूरज निकले और अस्त हुए। मगर उस उस दिन के बाद फिर नही देखा। जब भी बेकारो की टोली उसी तरह उस टूटी दीवार पर लदी होती है। एक म पूछता हू तो वह लापरवाही स 'पता नही' कहकर एक आर खिसक जाता है। फिर वही प्रश्न दूसरे से करता हू। उत्तर मिलता है, 'उसन नीद की गोलिया खा ली है। शायद ही बचा हो।'

मुझे एक धक्का-सा लगा। मैं अन्दर तक काप जाता हू, कितना सुघड, साहसी और हाजिरजबाब था वह लडका! मन कहता है उस मरना नही चाहिए था। अपने लिए न सही, दूसरा क लिए जिन्दा रहना जरूरी था। ऐसे लोग ही तो क्राति का सूत्रपात करत ह। भगवान न करे, वह मरा हो।

मैं उदास मन अपनी कुर्सी म जा धमता हू। काम म मन नही लगता। जा फाइल जिस हालत म थी वसी ही पडी रहती है। मुझे या बुझा-बुझा देख साथी लाग पूछ बठत है, 'तबीयत ठीक नही है?

'नही। मैं सरासर झूठ बोल दता हू।

'छुट्टी कर लो।'

'ठीक है छुट्टी कर लेता हू' और मैं 'हाफ डे लीव लेकर घर लौट जाता हू।

अगले दिन दफ्तर पहुचता हू तो हक्का बक्का रह जाता हू। बार बार चश्मे के लैन्स साफ करता हू। लगता है, कही मैं सपना तो नही देख रहा हू। जिस्म मे चिकोटी काटकर जागने का अहसास करता हू। वही था। हजामत बनी हुई कपडे-लत्ते से चुस्त दुरुस्त। बाल वैसे ही, शायरो-जैसे। हाथ म उसी गाडी की थैली और टिकटे। माजरा क्या है, समझ मे नही आया। मैं दफ्तर से निकलकर उसके पास पहुचता हू। वही बेलौस हसी उसके अधरो पर बिखर जाती है। मैं हैरानी से पूछता हू, 'यह क्या ? तुम तो मर गए थे !'

'बहुत सख्तजान आदमी हू। ऐसे थोडे ही मर जाता।' वह शायराना अदाज मे कहता है 'मरने के बाद ही तो जीना सीखा है, बाबू साहब ! सालो नीद की गालिया भी नकली निकली। अपने देश म है कोई असली चीज।'

'फिर फिलासफी बघारने लगे ?' मैं मुस्कराता हू।

'फिलासफी पर न आता तो यह थैली कैसे हाथ मे आती। जब नकली गोलियो से चिढकर मौत दरवाज स लौटने लगी, तो चुपचाप मेरे कान मे कह गयी, 'बेटे ! तेरे पास दो साल क असली बिल और हिसाब की पर्चिया हैं और तेरा मालिक इन्कमटैक्स वालो को नकली हिसाब किताब दिखाता है। देखता क्या है। लडा दे असली को नकली से। और बस, थैली अपने हाथ मे आ गयी। मुकदमा चलने तक अपनी नौकरी पक्की। सरकारी गवाह हू न !'

और वह बेसाख्ता ठहाके लगाने लगा।

पीतावर

पीतावर को आप जरूर जानत होंगे। यदि नहीं, तो मैं उसका हुलिया बताये देता हू। वह मझोले कद का सौंकिया अधेड है। चेहरे पर गगा जमुनी दाढी है। खद्दर के कपडे पहनता है जो साफ तो होते हैं, पर उसकी मुफलिसी की कहानी कहते होत हैं। पायजामा घुटना तक घिरा होता है। अगर कुर्ते की आस्तीनें नीचे उतरवा दी जायें तो कुहनी पर बन गोल छेद दसे जा सकत हैं। बोलने का अदाज लीडराना है। कामरेड उसका चहेता शब्द है। रग गेहुआ है और आदतें शाहाना हैं। चाय की दुकान पर पाच-सात चायो का बिल एक साथ चुकाना उसकी दरियादिली का सबूत है।

अब तो शायद आपको याद आ गया होगा उसका चेहरा। यदि नहीं, तो मैं उसका पता ठिकाना भी बता देता हू। वसे उसका अपना कोई मकान दुकान नहीं। चाहता तो आज उसके चूतडो म भी कोई कुर्सी चिपकी होती। एक दो कोठी खडी होती और लुभाव के कोटे-परमिट जेब म पडे होत। पर उसने सब पर ठोकर मार दी थी।

हा, तो मैं आपको उसका पता ठिकाना बताने की बात कह रहा था। वह अपने शहर के चौरास्तो पर खडे रिक्शा म घूमता मिल सकता है। किसी खोमचेवाले के साथ थाने अथवा कारपोरेशन के दफ्तर म देखा जा सकता है। सही बात तो यह है कि अन्याय का विरोध करना उसका ध्येय बन गया है। तभी तो रिक्श-खोमचे वाले और कुली-कबाडी सभी उसे आखो पर बिठाते हैं। पीतावर की एक आवाज पर हजारो आदमी सडक पर इकट्ठे हो जाते है।

पीतावर तब बी० ए० म पढता था। देश के कोने कोने म आवाज उठी—'करो या मरो! अग्रेजो, भारत छोडो!'

देश के हजारो लाखो नौजवान गोरी हुकूमत का तख्ता पलटने के लिए सिर कफन बाधकर निकल पडे थे। थाने, डाकखाने और कचहरियो की होली

जलायी जाने लगी। टेलीफोन टेलीग्राफ के खंभे और रेलवे की पटरियां उखाड़ी जाने लगी। सारा देश आजादी का परवाना हो गया। एक तरफ गोली कांड हो रहे थे, दूसरी ओर सत्याग्रहियों से जेलें पाटी जा रही थी। पीतांबर भी सींखचों के पीछे चला गया।

जेल में पीतांबर की भेंट भगवत शरण नाम के व्यक्ति से हुई। यही भगवत शरण उसका राजनीतिक गुरु बन गया। वह राजनीतिक बंदियों को इकट्ठा करता। कहता—'साथियो! शेर के सामने हाथ जोड़कर कहो कि हे जंगल के राजा, मुझे मत खाना तो क्या वह मान जायेगा? तिलकजी के अनुसार 'आजादी हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' और अधिकार हमेशा लड़कर लिया जाता है। भला फिर अंग्रेज हमें सेंत-मेंत में आजादी क्यों देने लगे।'

पीतांबर घंटों घंटों एकांत में बैठकर भगवतशरण की बातों पर विचार किया करता। पढ़ने लिखने का शौक था ही। मार्क्सवाद का गहन अध्ययन किया और जिस दिन जेल से छूटा तो कामरेड था।

उसने अपना कार्यक्षेत्र बदल दिया। वह कारखानों में मजदूरों के बीच काम करने लगा। उनके गुप्त संगठन बनवाता। हड़तालें करवाता और जेल जाता। देश के आजाद होने तक उसका यही क्रम चलता रहा।

देश आजाद हुआ तो उसके पर जमीन पर न पड़ते थे। वह महसूस करता था कि मानो वही देश को आजाद कराने वाला हीरो है। वह चौराहों और पार्कों में मजमा जमा कर लोगों के सामने आजाद देश की तस्वीर पेश करता। कहता— भाइयो! अब हम आजाद हो गये हैं। देश खुशहाल होगा। गरीबी शब्द शब्दकोश से हटा दिया जायगा। हर आदमी के पास काम होगा। देश में शोषण नाम की कोई चीज न होगी।

और भी न जाने क्या-क्या सब्जबाग उन्हें दिखाता। स्वयं सुनहरे सपनों में खोया रहता।

लेकिन यह क्या? उसे आशा न थी कि आजादी के बाद उसकी हैसियत सिर्फ भिखमंगे की रह जायगी। जिस देश के लिए उसने पढ़ाई छोड़ी, जेल काटी, बीमार मां बाप की तीमारदारी का सौभाग्य भी प्राप्त न हुआ, पैरोल पर छूटकर आया तो मम्मी तक के दर्शन न हो सके थे आज वही देश उसे भूल गया। उसे क्या, उन सभी को जो गोली और संगीनों के सामने छातियां अड़ा दिया करते थे। सत्ता टोपियों ने कब्जा ली। शेष मशीन वही पुरानी उसी की रही। जो आई० सी०

एस० और पी० सी० एस० अंग्रेजों के तलुवे चूमते थे वही सफेद टोपियों को रानीपाल देने लगे।

पीतांबर के दिल में हूल-सी उठती। क्या सोचा था, क्या हान जा रहा है। क्या यही था गांधीजी के सपनों का रामराज? भगतसिंह, आजाद, सुभाष ने इसी आजादी के लिए कुर्बानियां दी थीं क्या?

दिन छिपते ही रिक्शा स्टैंड के साथ चलते फिरते ढाबे खुल जाते हैं। छबडों में अध जली रोटियां। बल्टियों में सब्जी-दाल और अलम्यूनियम की देगों में मीट भरा होता है। कोई कोई ढाबेवाला चावल भी बेचता है। ढाबेवाला के चारों ओर घेरा डाले रिक्शा-पुलर और झल्ली वाले मजदूर किरकिरी रोटियों का मजा लेते हैं और इस घेरे पर दोहरा घेरा कुत्तों का होता है। जिनकी ललचायी नजरें रकाबी में पड़ी हड्डियों पर जमी होती हैं। जैसे ही खाने वाला हड्डी चिंचोड़कर फेंकता है, कुत्तों में भीषण संग्राम छिड़ जाता है और जब लड़ने वाले लोट-पोट हो जाते हैं तो कोई तीसरा हड्डी उठाकर चंपत हो जाता है। मूर्ख कुत्ते!

हाफ प्लेट मीट।' पीतांबर ने खाते वक्त सोचा था कि रामसमझवा आज उसे कम-से-कम इतना तो खिला ही देगा। सुबह पुलिस वालों ने उसका रिक्शा बंद कर दिया था और पीतांबर उसे छुड़ा कर लाया था।

'गुरु, रोटी खानी है तो खाओ। मीट-मीट अपने बस का नहीं।' रामसमझवा एकदम बदल गया।

पीतांबर के मुंह का जायका कसैला हो गया। रोटी मुंह में फूल गयी। लानत है ऐसे खाने पर। पीतांबर की आत्मा मर सी गयी। अगर वह थाने न जाता तो बेटा की जेब के सारे नोट पुलिस वाले झाड़ लेते। ठर्रा गटकने के लिए तो हरामी के पास पैसे हैं पर उसे अच्छी तरह रोटी खिलाने के लिए नहीं। उसने बुझे स्वर में कहा—'रामसमझ, इस वक्त पैसे तुम दे दो। कल मैं दे दूंगा।'

फटी कमीज के नीचे सड़ी बड़ी की नोटों में फूली जेब पर हाथ फेरते हुए रामसमझवा बोला—'गुरु खून पसीने की कमाई बाल-बच्चों के लिए है, उड़ाने के लिए नहीं।'

और उसने रिक्शा की सीट के नीचे छिपाया अद्धा निकालकर बचा हुआ ठर्रा हलक में उलट लिया। फिर मुंह बिदराते हुए बड़बड़ाया—'कर लो भरोसा। उल्लू के पट्ठे ने अठन्नी फालतू मार ली और भर दिया कोरा पानी।' उसने कच्ची खींचने वाले भट्टी के मालिक को गाली दी।

पीतांबर जैसे तैसे रोटी सटककर नीलापन की बुग्गी पर चला गया। बस यही एक ठेक थी, जहां वह रैन बसेरा कर लिया करता था। सीलापत कपड़ा मिल के

बुनकर खाते मे काम करता है। जब से पीतांबर ने उनके मिल मे यूनियन बनवाई और मजदूरो की मांगो को लेकर भूख हड़ताल की, तब से वह पीतांबर का पक्का मुरीद हो गया है। जान भी ले तो उजर नही।

पीतांबर ढिबरी की रोशनी मे नियमित रूप से कुछ-न-कुछ पढता था। पर आज की ठेस न उसके मन को खंडित कर दिया था। चाहकर भी वह 'मेरे विश्वविद्यालय' मे मन नही लगा पा रहा था। उसके दिमाग म कानखजूरे-से रेंग रहे थे। जिन लोगो के लिए वह अपना सवस त्याग चुका है, वह उसे रोटी खिलाते हुए भी कतराते हैं। क्या उसकी नियति सदा भिखमगे की बनी रहेगी? चाहता तो वह बहुत कमा सकता था। सेठ चदूलाल ने बोनस की माग छोड देने के लिए उसे नोटो से भरी अलमारी के सामने ला खडा किया था और कहा था—'कामरेड, जितना रुपया तुम ले जा सकते हो, ले जाओ। ये कगले तुम्हे क्या देंगे?'

और उसने अलमारी की ओर आख उठाकर देखा तक न था। वह जीवन भर मजदूरो के लिए जिया है। फिर उसकी मागो का सौदा कसे कर सकता था।

पर उसे तो दो जून की रोटी भी मयस्सर नही। उसका मन कराह-सा गया।

वह तीन दिन से बराबर सोच रहा था कि ताम्रपत्र ले या न ले। फैसले के लिए आज की रात उसके पास है। कल स्वतत्रता सनानियो को ताम्रपत्र दिए जाएगे। उसके मन मे विचार उठ रहे थ, कि ताम्रपत्र लेने मे हज भी क्या है। पेंशन से गुजारा होने लगेगा। रोटियो के लिए किसी के हाथ की ओर ताकना नही पडगा। मजदूरो का काम करने मे अडचन नही पडेगी। तभी उसके विचारो म ककडी आ गिरी। गली के उस पार दो औरते झगड रही थी। झगडा किस बात के लिए है, वह समझ नही पा रहा था। बस, इतना जरूर समझ पाया था कि उनकी सडाध उडाती गालियो और फूहड वाक्-युद्ध म एक-दूसरे के चरित्र को खूब उजागर किया जा रहा था। कौन किसकी हराम की कमाई खाती है। किसको किससे मुह काला करते पकडा गया। आदि-आदि।

उसके दिमाग की नसे चटकी। तो क्या लोग उसके चरित्र पर भी ऐसे ही भोड शब्द उछालेंगे। दलाल गद्दार और बिका हुआ कहकर उसका तिरस्कार किया जाएगा। माया ठगनी उसके सारे जीवन की तपस्या को खडित कर देगी। उफ! कितनी कठिन परीक्षा का समय आ गया है। वह अपने चारो ओर की दुनिया को आखें फाडकर देख लेना चाहता है। लेकिन झुग्गी के हर कोन म अधेरे का महासागर ठाठें मारता होता है। तल खत्म हो जाने स ढिबरी कभी की बुझ गयी थी। वह बिना किसी निणय के न जाने कब सो गया।

अगले दिन शाम को वह राजधानी से लौटा तो झुग्गियों की ओर बढ़ते हुए पैर बोझिल हो रहे थे। मानो ताम्रपत्र लेकर उसने कोई भयंकर अपराध किया है। उसके भीतर से कोई चीज निकल गयी है और वह बहुत कमजोर हो गया है। रास्ते में उसकी बराबर से कोई निकलता तो ऐसा लगता, मानो निकलने वाला उसे हिकारत की नजर से घूर रहा है। पहले तो उसने कभी ऐसा महसूस नहीं किया था। फिर न जाने क्यों आज उसे हर आदमी से डर लग रहा था।

वह सावधानी से हर नजर को बचाता हुआ झुग्गी पर पहुंच गया। लीलापत इस समय दरवाजे पर उकड़ूं बैठा बीड़ी धौंक रहा था। उसने सहज भाव से पूछा—'गुरु, तामर पत्तर ले आए?'

'हूं' लीलापत का स्वर उसके मानो गले किरच-सा घुस गया। मानो वह उसका मजाक उड़ा रहा था। पर लीलापत ने ही तो उसे ताम्र पत्र लेने के लिए उत्साहित किया था। कहा था—गुरु, तामर पत्तर लेने में हरज क्या है। वह तुम्हारी देस-सेवा का मेहनताना है और उसकी सलाह मानकर ही उसने ताम्रपत्र लेने का निश्चय किया था। फिर वह उस पर फिकराकशी क्यों कर रहा है?'

उसके बाद पीतांबर झुग्गी से जरा कम ही निकलता। मजदूरों से आंख मिलाने की ताव उसमें न थी। मजदूर बस्ती में ताम्रपत्र पर होने वाली प्रतिक्रियाएं हवा पर सवार होकर उसके कानों तक पहुंच रही थीं।

एक दिन रात को रेलवे लोको का फिटर भरतसिंह उसके पास दौड़ा आया और बोला—कामरेड, जल्दी चलो। मधुवा शंटिंग करते इंजन से कुचल गया है।

पीतांबर एकदम चमका, लेकिन अगले क्षण ही बुझ गया। कोई उत्तर देते न बन पड़ा और न ही वह फुर्ती दिखाई पड़ी, जो अक्सर किसी मजदूर के हादसे की बात सुनकर उसमें आ जाया करती थी। वह हाथ का कौर तक छोड़ दिया करता था। इसके बाद तो वह बिना किसी फैसले पर पहुंचे सोना हराम समझता था। गेट मीटिंगों में दहाड़-दहाड़कर गला बैठा लिया करता था। लेकिन आज वह अपने अंदर कोई टूटन महसूस कर रहा था। वह तत्काल निर्णय न कर पाया कि लोको जाए या न जाए। उसने मरे-से मन से कहा—रात बहुत हो गयी है। सुबह बात करेंगे।'

भरतसिंह उसका उत्तर पा अवाक खड़ा रह गया। उसने पहले कभी पीतांबर के मुंह से ऐसा जवाब न सुना था। उसने निरीहता से कहा—कामरेड, अभी तो लाश मौके पर पर पड़ी है। जो चाहेंगे हो जाएगा।

'तबीयत ठीक नहीं है।' पीतांबर साफ कन्नी काट गया। उसे टालने की गरज से बोला—यूनियन के दूसरे नेताओं को बुला लो। मैं सुबह पहुंच जाऊंगा।

भरतसिंह लौट गया। मगर पीतांबर के मन की शांति अपने साथ ले गया।

उसकी आखो मे जवान-गबरू मधुवा की आकृति तैरन लगी। अगर उस दिन मधुवा साहस से काम न लेता तो चमचा यूनियन के गुडो ने उसका काम ही तमाम कर दिया होता। वह गेट मीटिंग करके लौट रहा था तो केबिन के पास चार-पाच गुडा ने उस पर हमला कर दिया था। मधुवा उस समय शटिंग करा रहा था। उसकी चीख सुनकर वह दौडा आया और झडियो की मूठ मे मार-मारकर उसने गुडों का भगा दिया था।

और वही मधुवा आज याड में कटा पडा है। पीताबर के शरीर और मस्तिष्क म झुरझुरी-सी हुई। उसकी आखो मे मधुवा की नव विवाहिता रामरती का चेहरा कौंध गया। अभी तो बेचारी का चूडा भी मैला नही हुआ है। रति-सी सुन्दर रति की माटी-मोटी आखो स अविरल अश्रुधारा बह रही है। माथे पर लाल चाद को वैधव्य का राहु ग्रस गया है। पीताबर की आँखें डबडबा आई। मधुवा उसे अक्सर अपने घर खाना खिलाने ले जाया करता था। रति उस दिन कितनी खुश होती थी। कहा करती थी—हमार कोउ दद्दा नाहि, बस तुमी अपन दद्दा हुइव।'

एकाएक उसमे फिर स चीते जैसी फुर्ती आ गयी और वह अगले क्षण ही लोको स्टाफ यूनियन के दफ्तर की ओर आंधी की तरह बढा जा रहा था।

एक कातिल का बयान

मैं खूनी हू। मैंने पांच आदमियो की हत्या की है। आप चाहें तो मेरा यह इकबालिया बयान टेप कर सकते हैं। टेप बजाकर पुलिस से रपट दज करा सकते हैं। पर ध्यान रहे कि मैं कोई ऐरा-गैरा खूनी नहीं हू। मेरे इस बयान के बावजूद मेरे खूनी होने का कोई प्रमाण मौजूद नही है। इसलिए मेरे खिलाफ अदालत म कोई मुकदमा नही चल सकता।

मैंने जिस परिवार का कत्ल किया है, वह एक मामूली आदमी का भरा-पूरा परिवार था। दो लडके, एक लडकी और दो मिया-बीवी। हुए न कुल पाच ! बेचारे मर गये पाचो। लेकिन मेरा इरादा तो सिफ एक को कत्ल करने का था और किया भी एक का ही था, पर बाकी चार अपने आप मर गये। इसमे मैं क्या करू ? मेरा क्या कसूर है ? यह तो मरने वालों की सरासर ज्यादती है मेरे साथ। खून एक का किया और चार के खूने-नाहक का इल्जाम मेरे मत्थे मढा जाए। उन्हे मरना नहीं चाहिए था। मैं कोई 'आल्हा' का हीरो तो था नही कि 'एक को मारे दो मर जाए, तीजा मरे दहल के माय' मैं तो आम आदमी से भी पतला-दुबला और डरपोक हू।

डरपोक ? जी हा, बिलकुल कबूतर क दिलवाला। बिल्ली मौसी की शक्ल देखते ही दिल की धडकन बद होने लगती है। आप कहेगे कि इतना डरपोक आदमी कभी खून नही कर सकता। मैं झूठ बोलकर बिना वजह सस्पेन्स पैदा कर रहा हू। लेकिन भाई साहब मेरी बात का यकीन कीजिए। इतना डरपोक था, तभी तो मैंने इस परिवार को मुल्के-अदम पहुचा दिया है। चूकि मुझे 'ऊपर वाले' का आदश था कि इस आदमी का कत्ल होना चाहिए। वरना ।

'वरना, वरना क्या ?' मैंने सहमकर पूछा।

'मैं तुम्हें कत्ल कर दूगा। ऊपर वाला गुर्राया।

अब सोचिए जनाब, कत्ल तो किसी का होना ही था। चाहे मुरारी का हुआ या फिर मेरा होता। अब तो शायद आपको मेरे खूनी होने मे सदेह न होगा और न ही कोई शिकायत होगी कि मैंने खून क्यो किया ? यदि हो भी तो मैं क्या कर

सकता हू । मेरी जगह आप होते तो आप भी यही करते । यानी मुरारी का न सही बिहारी का कत्ल करते । मुरारी और बिहारी दोनो एक जैसे आदमी हैं । दोनो मे से किसी का भी कत्ल हो, इससे क्या फक पडता है ।

कहने वाले कहते हैं कि हर कत्ल-खून, झगडे-रगडे के पीछे जर, जमीन और जोरू निमित्त होते हैं । लेकिन साहब, मैं अपन बाप की कसम खाकर कह सकता हू कि मुरारी से मेरा इन तीनो चीजों का कोई सबध नही था । न वह मेरा पडोमी था, न रिश्तेदार और न किसी व्यापार का भागीदार । इसलिए जर जमीन के झगड का तो कोई प्रश्न ही नही उठता । रही जारू की बात तो पहले तो अपनी जोरू नौ बच्चे जनन वे कारण ईख की सूखी खोई की तरह हो रही है । आखें गडढो मे गाल ओखल और छाती की थैलिया बालिस्त भर नीचे लटकती हैं । बताइये ऐसी निचुडी खोई मे कौन पागल रस ढूढेगा और उसकी जोरू भी कोई हूर नही है । बोले तो फटा बास । देखने मे कोबरे की नानी । ऐसी काली कि मेरा काला पप शू भी शर्मा जाए । यानी हम दोनो मे से किसी की आशनाई किसी की बीवी से नही हो सकती थी । खैर ।

मैं कहा रसिकता मे डूब गया हू । अब तो आप जान गये होगे कि मुरारी किसी मोर्चे पर भी मेरा प्रतिद्वन्द्वी नही था । वह मेरे सामन सदा विनम्रता की मूर्ति बना रहता था । अगर मैं उससे कहू कि मुरारीलाल साठ आठ घटे तपती दोपहरी म एक टाग से खडा रहना है, तो मजाल क्या वह जरा भी चू चपड कर जाए । मेरी हर बात को वह जी सा'ब जी सा'ब कहकर स्वीकारता था । मच, आज मैं उसका खून कर वैसे ही पछता रहा हू जैसे कभी लक्खी बनजारा अपने कुत्ते को मारकर पछताया था ।

आप सोच रहे होंगे कि ऐसी चिकनी चुपडी बातें कर मैं आपके सामने निर्दोष होने की सफाई पेश कर रहा हू । पर साहब, मेरा ऐसा मन्तव्य कतई नही है । यदि ऐसा होता तो मैं आपके सामने अपना जुम क्यो कबूलता ? कह देता, मैंने सिफ अपनी ड्यूटी की है । अपन से ऊपर वालो का आदेश मानना मेरा कतव्य है । यह तो मरन वाले का कसूर है । जो कलम की जरा सी नोक बर्दाश्त नही कर सका । मैंने उसे कोई चाकू तो नही घुसेडा था । पर कहने वाल कहते हैं कि मुर्गी को तकले का दाग काफी हाता है । सा बेचारा मुर्गा मुरारी निब की जरा-सी चुभन सहन नही कर पाया, मर गया ।

शायद अब आप उसके मरने का राज जानने को उत्सुक हो रहे होगे, होंगे भी क्यो न । आदमी की फितरत ही कुछ ऐसी होती है । पुलिस वाला किसी को पकडकर ले जा रहा हो तो हर देखने वाला यह जानने की कोशिश करता है कि वह आदमी क्यो पकडा गया ? अखबार मे हत्या अथवा बलात्कार की घटना हर

आदमी पहले पढन का प्रयत्न करता है। ढिशुग-ढिशुग' वाली फिल्में हिट हो जाती हैं। फिर यह तो ठहरा कत्ल का मामला। तो सुनिए—

बात कुछ ऐसी थी कि मुरारी हर दिल-अजीज ड्राइवर था। पर था 'कच्चो' मे। कम्पनी के नियमानुसार पहले हर आदमी की नियुक्ति कच्चो म होती है। मुरारी दूसरो के लिए हर समय जान देने को तैयार रहता है। अयाय के खिलाफ सघष करना उसकी आदत थी। एक दिन उसन बडे साहब को लगे हाथो यो लिया कि उसके साथी भीमसन की मा मर गयी थी। भीमसेन ने छुट्टी ली तो नामजूर कर दी गयी। बस मुरारी भीमसेन का पक्ष लेकर साहब से भिड गया—साहब, मजदूर की मा मा नही होती कुतिया होती है। मर गयी तो कोई भी टाग से खीचकर श्मशान मे फेंक आए। मा तो साहब लोगो की होती है, जो छीक भी आ जाए तो साहब को दफ्तर से गैरहाजिर रहने का मौका मिल गया। कपनी की कारें अस्पताल की आर दौडने लगीं।'

भला साहब ऐसी गुस्ताखी कैस बर्दाश्त करता। दिल मे गाठ बाध ली कि वह मुरारी को मजा चखाकर रहेगा। मुझे बुलाया और मुरारी की रिपोट करने को कहा गया। मैंने उज्र किया कि साहब मुरारी दूसरे रीजन का ड्राइवर है। मेरा उससे क्या वास्ता? साहब गुर्राया— मिस्टर, तुम स्टेशन इचाज हो। तुम्हें रिपोट करनी ही होगी। वर्ना '

'वर्ना वर्ना क्या?' मैंने सहमकर पूछा।

'तुम्ह हिली स्टेशन पर फेंकवा दूगा। जहा न तुम्हार बच्चो के लिए स्कूल कॉलेज होगा और न रहने को मकान। स्टेशन के टिनशेड मे रात बिताओगे तो अक्ल दुरुस्त हो जाएगी। समझे! सोच लो, अभी समय है।'

मैं साहब की बातो पर गम्भीरता से सोचता रहा। मुझे अपने घोसले के तिनके बिखरत हुए दिखाई पडने लगे। मेरी आखो के सामने अपने बच्चा का भविष्य घूम गया। दूसरी तरफ मुरारी और उसका परिवार था। मेरे सामने ये निर्णायक क्षण थे। अपने परिवार की हत्या करूं या मुरारी के परिवार को। दोनो म से किसी एक की हत्या होना अवश्यभावी था।

मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी होता है। भला मैं ही कसे अपवाद होता? मैं भी तो एक साधारण मनुष्य ही हू। मैंने 'स्व' के मोह मे फसकर मुरारी के परिवार की हत्या करन का निश्चय किया। मैंने कापती आवाज म साहब से आखें बिना मिलाए 'ऐसा ही होगा' कहा और अपन कमरे मे चला गया।

मेमने और भेडिये वाली कथा तो आपने सुनी ही होगी। मेरे अदर का आदमी मर गया। मैं मेमन मुरारी को खान की जुस्तजू मे लग गया। दिन भर मैं किसी कातिल की तरह अपने को मुरारी का कत्ल करने के लिए तैयार करता

रहा। आखिर वह घडी आ गयी। मुरारी ने गाडी स्टैंड म लाकर खडी की और सवारी उतारी। मैं अपना खूनी पजा उठाए लपक्कर उसके पास पहुचा और मेमने वाली कथा का श्रीगणेश किया—'तुमने आज फिर गाडी गलत खडी की ?'

'गाडी तो रोज सही खडी होती है।' मुरारी न सहज उत्तर दिया।

'मैं कहता हू गाडी गलत खडी है।' मैं भेडिये की तरह गुर्राया।

मुरारी एक क्षण के लिए सकते म आ गया। उसे मुझसे ऐसे व्यवहार की अपेक्षा न थी। उसन एक नजर भरकर सही खडी गाडी का देखा और बोला—'गाडी सही खडी है, इनचारज सा'ब !'

'अच्छा ! सही खडी है ? अभी बताता हू।' कहकर मैं धडधडाना हुआ अपने कमरे मे चला गया और रिपोर्ट लिखते हुए हिंस्र स्वर मे बोला—'गलती करते हो और ऊपर से अकडते भी हो। दुर्व्यवहार का चाज और लगाऊगा।'

मुरारी हक्का-बक्का हो मेरा मुह ताके जा रहा था। शायद मेरा ऐसा व्यवहार उसकी कल्पना म भी न होगा।

कल्पना म तो मैंन भी कभी ऐसा नही सोचा था कि मैं इतना गिर सकता हू। पुलिस वालो की तरह किसी निर्दोष को दोषी साबित कर सकता हू। मेरे हाथ काप रह थे। आखो के सामन से रिपोट पर लिखे शब्द नाचकर अदृश्य हो रहे थे। शरीर मे चीटिया-सी दौड रही थी। मुझे लग रहा था कि मैं किसी का गला काट रहा हू। खून कर रहा हू।

अब तो समझ गए होंगे न आप कि मैं खूनी हू। मैंन मुरारी का खून किया है। उस रिपोट से मुरारी की नौकरी साहब की भेंट चढ गयी। वह कई महीनो से बेकार भटक रहा है। दूसरी नौकरी नही मिली। कभी-कभी प्राइवेट बसो म एवजी मिल जाती है। मजदूर का घर कमाते-कमाते खाली रहता है। फिर बेकार मुरारी कब तक पूरा पाडता। उसकी छोटी बच्ची दवा के अभाव मे दम तोड गई है। पत्नी को टी० बी० हो गई। फीस न जमा करने म बडे लडके का नाम स्कूल म खारिज हो गया ह। बिना रमजान के उसके परिवार का रोजे रखने पडत है। वह स्वय भी सूखकर ठूठ भर रह गया है।

इस सबका जिम्मेदार मैं हू। सिफ मैं। मैंने मुरारी के परिवार को काल के गाल म धकेल दिया ह। दोस्तो ! मेरी साफगोइ से आप मुझ क्षमा कर सकत हैं, लेकिन मैं अपने आपको कभी क्षमा नही कर पाऊगा। मुरारी के परिवार का खून मेरे सिर चक्कर बालता रहेगा। मेरे हाथ खून मे भरे हैं। एस खून स जो धोन स नही छूटता। जो आखों से दिखाई नही देता। लेकिन जिसकी दहशत मेरे दिलो-दिमाग पर छाइ है।

यह घर मेरा नही

लम्बे समय तक जानकी बाबू आश्रम निवास करते रहे। यशोदा की मत्यु के बाद से उनकी विरक्ति बढ गयी थी। उनका सारा समय अध्ययन-मनन म बीतन लगा था। मन ऊबता तो गगा के किनारे निकल जाते। देर तक घूमत। दूर निकल जाते। पहाडो की नयनाभिराम छटा म वह खो जाते, बेभान हो जाते। उनके कानो म कल-कल निनादिनी गगा का मधुर सगीत गूजता रहता। जब प्रकृति-सम्मोहन उन्हे पाश से मुक्त करता तो सन्ध्या-वदन का समय हो रहा होता। यही थी उनकी दैनिक चर्या।

कभी-कभी विरक्ति पर अनुरक्ति अपना पाशा फेंकती। उनका मन छटपटाने लगता—'पका पान हू। न जान किस दिन डाल स टूट जाना पडे। क्या न एक बार परिवार के लोगो को देख आऊ? पहले तो कुछ दिनो तक लडको की चिटठी पत्री आ जाती थी, लेकिन अब तो कभी-कभार ही पत्र के दशन होते है।

उन्ह टीस होती। सोचत ससार कितना स्वार्थी है! जिस औलाद को समथ बनाने म उन्होने अपनी पूरी आयु लगा दी है वही उन्हें ऐसे बिसरा देगी, एसी आशा न थी। घटो सोचते। कुढते। विरक्ति उन्हें पुन अपनी ओर खीचती। लेकिन अनुरक्ति फिर उनकी कोमल भावनाओ को मधुर रस देती—'अरे जानकी, सतान पत्थर हो सकती है, पर बाप कभी सगदिल नहीं हो सकता। चल एक बार देख आ उन्हे। फिर न जाने देखना नसीब हो या न हो। मरते वक्त मन म सिफ तडपन रह जायगी। सुख से मर भी न सकोगे।'

और वह एक दिन घर के सामने खडे थे।

घर लौटते समय कितना उछाह था उनके मन मे' जब परिवार के लाग जानेंगे कि बाबूजी आये हैं तो सब-के-सब बाहर दौडे चले आयेंगे। बेटे-बहुए चरणरज लेकर उनका सत्कार करेंगे। लडके शिकवा करेंगे— बाबूजी, टेलिग्राम क्यो नही किया, हम कार लेकर स्टेशन लिवाने आ जाते।' बडे लडके रविकात का लडका चीनू दौडकर उनके परो मे लिपट जायगा। अब तो वह काफी बडा हो गया होगा। वह अपनी तातली भाषा म पूछेगा—'दादाजी, तुम कहा चले दये ये? बले

दिनो मे आये हो। फिल तो नहीं जाओदे ?'

मन मे गुदगुदी सी हुई। मगर ऐसा कुछ नही हुआ। कोई उनकी अगवानी के लिए नही आया। सारा माहौल बदला हुआ था। गली मे कितनी ही कारे खडी थी और मकान मे काफी गहमागहमी थी। लगता था, कोई उत्सव होने वाला है। वह अपने मस्तिष्क पर बार-बार जोर दे रहे थे कि किस उपलक्ष मे यह सज-धज हो सकती है। मगर याददाश्त मे ऐसा कोई बिंब उभर कर नही आ रहा था। आज वह स्वय आश्चर्य म थे, जबकि उन्हे सदा दूसरो को सरप्राइज देने म आनद आता था।

सरप्राइज की बात दिमाग में उभरी तो उनको यौवनावस्था लौट आई। विवाह के बाद यशोदा नयी नयी शहर आयी थी। कभी-कभी दफ्तर मे बैठे उन्हे यशोदा को सरप्राइज देने की सूझती। वह आधे दिन का अवकाश ले घर के दरवाजे पर आ धमक्ते। बेचारी यशोदा काम धधा निबटा कर दोपहरी की नीद की मीठी खुमारी म होती। तभी वह हौले से दरवाजे पर थपकी देते। आखो म नीद और यौवन के मिले जुले गुलाबी लाल डोरे लिये यशोदा किवाड खोलती। पति को यो असमय सामने खडा दख वह चौक जाती। हक्की-बक्की रह जाती। उतावले स्वर म पूछती—'जी ठीक है न ?'

'पगली, जी को क्या हुआ है ? यह दरवाजा बद करत हुए ढेर-सारा प्यार यशोदा पर उडेल देते। कहते—'दफ्तर म तेरी याद आयी तो चला आया। सोचा यशो मुझे अपने सामने यो अचानक खडा देख चौक जायेगी।'

'चलो, हटो। बडे वो हो।' यशोदा विलाडित हो गालो मे जीभ घुमाती हुई शर्मा जाती। कहती—'मैं तो घबरा ही गयी थी कि कही तबीयत खराब न हो गयी हो।' और फिर दिन के आख मूदने तक उनके किवाड बद ही रहते।

यद्यपि यशोदा के मरने के बाद से उनके मन मे अपने परिवार के प्रति खटास की बू बस गयी थी। फिर भी एक वितृष्णा उन्हे छल रही थी। शायद उनके समझने म कही कोई त्रुटि रही है। आधुनिकता का गिलाफ ओढते परिवार के साथ पटरी बैठाने म शायद वह असफल रहे हैं। तभी तो उनके अपने बच्चो मे एक अतर स्थापित हो गया है। लडके-बहुए क्लबो मे जाना, डास करना और मद्यपान जैस दुर्व्यसनो मे अपनी शान समझते हैं। मगर उन्होंने एक समझदार बाप और घर के मुखिया की हैसियत से सब ढोया है। वह कभी उनके रास्त मे रोडा बन कर नही आय। फिर अपना खून, अपना ही होता है। बच्चे कितने भी माडेट हो जाए, मा-बाप को कैसे बिसरा सकते हैं ?

किंतु यह उनके मन की भ्राति थी। भ्रम ध्वस्त हो गया। वह अपने मकान के सामन अजनबी की भाति खडे थे। कोई उनकी सुधि लेन वाला न था। वह उदास आखो से अपने बनाय मकान को निहारे जा रहे थे। अनायास ही उनकी

निगाह उस स्थल पर जा अटकी, जहा उन्होंने अपने नाम की पीतल की चमचमाती प्लेट लगवाई थी। अब वहा उनके तीनों सपूतों की नेम प्लेट लगी थी। जो उन्हें उनका मकान से अधिकार समाप्त कराने का अहसास करा रही थी। मन कराह उठा—'तो अब यह मकान भी मेरा नही। कितने कष्ट झेलकर इसकी दीवारें खडी की थी। इसकी एक-एक ईंट मे मेरे खून की बूंदें लगी हैं। कितनी सहजता से उसका स्वामित्व धो-पोछ दिया गया। आज यशोदा उनके साथ होती तो उस पर क्या गुजरती ?'

मन तडप उठा। वह लौट जाना चाहते थे। तभी रविकात किसी मेहमान को विदा करने बाहर आये। जानकी बाबू रास्ते से हटकर एक ओर खडे हो गये। वे बराबर से निकल गये। मेहमान ने अपनी कार स्टार्ट की और रविकात से हाथ मिलाकर चले गये। रविकात लौटने लगे तो उनकी निगाह जानकी बाबू पर पडी, वह आश्चर्य मे रह गये। आगे बढकर उनके चरण छूते हुए बोले—'बाबूजी, आप! कब आये? बाहर क्यों खडे हैं? अदर चलिए।'

जानकी बाबू का मन हो रहा था कि रो पडें। उन्होंने कोई उत्तर नही दिया। चुपचाप रविकात के साथ अदर चले गये। उनके ठहरने की व्यवस्था मकान के पीछे वाले भाग मे की गयी। इसके पीछे रविकात की कोई भी भावना रही हो, लेकिन जानकी बाबू के मन ने कहा, शायद उन्हें एकात कोने मे इसलिए डाल दिया गया है कि उनके प्रिय मेहमानो की दृष्टि जानकी बाबू पर न पडे।

ओह! तो क्या ये लोग आज उस पिता मानने से भी इनकार करते हैं। कही इनके बदलते वर्ग चरित्र पर यह धब्बा साबित न हो। वह रो पडे। उनके अतस से मृत पत्नी के नाम एक हूक-सी निकली—'यशो, अच्छा हुआ तुम यह सब देखने को नही रही। क्या इसी सतान के लिए हमने जीवन भर पापड बेले थे?'

छोटी बहू उन्हें चाय-नाश्ता देने आयी थी। उन्होंने हथेली से उमडते आसू पोछ लिये। कही वह उन्हे रोता देख न ले।

जानकी बाबू ने क्लर्की से जीवन शुरू किया था। प्रारम्भिक दिन सुखद रहे, किंतु जैसे-जैसे उनकी गृहस्थी का विस्तार हुआ, आर्थिक समस्याओ के साथ मकान की किल्लत भी सामने आने लगी। साल छ महीने मे उन्हें मकान बदलना पडता। कभी मकान रुचि के अनुकूल न होता, तो किसी मे मकानदार से न पटती। नये मकान की तलाश मे उन्हें किसी नौकरी के उम्मीदवार की भाति अनेक प्रश्नो का सामना करना होता। 'बच्चे कितने है? मिषभोजी है या आमिषभोजी? खाना अगीठी पर बनाते है या स्टोव-गैस पर? कमरे मे अगीठी नही जलेगी। बनी सिर्फ दस बजे तक जला सकते हो। घर मे पत्नी के अलावा और कौन कौन मेम्बर हैं? रात मे देर तक घर से बाहर नही रहोगे।' कुल मिलाकर जानकी बाबू को लगता,

वह मकान मे नही, जेल की कोठरी मे रह रहे हैं। जहा उन्हें मकानदार की हर शत का पालन करना ही होगा। एक बार वह इवनिंग शो के टिकट न मिलने पर रात का शो देखन की भूल कर बैठे थे। परिणामत रात को लौटे तो वह पत्नी और बच्चे सहित भरी सर्दी मे गली मे घटे भर खडे रहे थे। उनके चिल्लान से साथ वाले मकानो मे रहने वाले तक जाग गये थे, मगर उनके मकान वाले घोडे बेच कर सोते रहे थे। दरवाजा खुलने तक बच्चे को छीक आनी शुरू हो गयी थी। उसे ठड लग गयी थी, अगली सुबह मकानदार का हुक्मे-नादिरशाही उन्हें मिला था—'यह शरीफों का मकान है। लुच्चे-लफगो के लिए यहा जगह नहीं। मकान आज ही खाली कर दो, वर्ना आपके हक मे अच्छा न होगा।' और एक मकान तो केवल इसलिए छोडना पडा था कि उनका सबसे छोटा लडका दात निकाल रहा था। उसे टटिटया लगी थीं। दिन मे दो बार उसने बरामदा गदा किया था। मकानदारनी के कोई औलाद न थी और उसे गदगी से सख्त नफरत थी।

जानकी बाबू न रोज-रोज मकान बदलने की परेशानी से आजिज आकर कई बार मकान बनान की सोची। वह देर रात गये तक चारपाई पर पडे मकान की रूप रेखा मे खोये रहते। कल्पना के अतिम छोर तक पहुचते-पहुचते उनकी आखो के सामने एक आलीशान मकान खडा हो जाता, किंतु जब वह अपनी योजना को क्रियान्वित करने के लिए धन की व्यवस्था पर गौर करते तो बना-बनाया मकान एक ही झटके म धराशायी हो जाता। उनकी इस योजना म कभी-कभी मुख्य सलाहकार के रूप मे यशोदा भी शामिल होती और अत मे निराश होकर कहती—'मकान बनाना बच्चो का खेल नही है जी। बच्चे बडे होन लगे हैं। गृहस्थी का भार बढ रहा है। उनकी पढाई लिखाई का खच ही इतना हो गया है कि रोटी मिलती रहे, यही काफी है।'

कई बार जानकी बाबू के पैर डगमगाये। सोचा, उसके साथियो ने खूब पैसा बनाया है, वह 'हरिचद' क्यो बना रहे? ईमानदारी के कारण उसके निकटस्थ लोग भी उससे बहुत खुश नही रहते। मगर मन नही मानता। सोचता, मेहनत और ईमानदारी की कमाई मे ही सुख है। बेईमानी से कमाने के लिए कितने ही गलत काम करने होंगे। गलत लोगो से सबध बनाये रखने होंगे। उन्ह प्रसन्न रखन के लिए कितने ही दुर्व्यसनो को पालना होगा। एक बार बहके कदम न जाने कहा ले जाकर छोडें। बस, वह अपनी योजना मे फेर-बदल करने लगते। वेतन मे बचत कर कुछ पैसा बचाया जा सकता ह। थोडा-बहुत यार-दोस्तो से मिल सकता है और प्रोविडेन्ट फड भी निकाला जा सकता है। किंतु उनकी यह योजना सरकार की उन योजनाओ की तरह थी, जो केवल कागजो म बनती बिगडती रहती हैं। वह कभी धन इकटठा नही कर सके और मकान का आधार केवल हवा मे लटका रहा।

बच्चो को योग्य बनाने में जानकी बाबू ने अपनी सामर्थ्य को शेष कर दिया। बडा लडका रविकात एक बडी फर्म म परसनल आफिसर था। मझला शशिकात मिनिस्ट्री मे गजेटेड अफसर लगा था और छोटा निशिकात बैंक म असिस्टेंट मनेजर हो गया था। उनकी इकलौती पुत्री विभा थी। वह भी घर बार की हो गयी थी और दामाद अमेरिका म स्थापित था। जानकी बाबू बच्चो की उनति स सतुष्ट थे।

परिवार को सवारने मे जानकी बाबू ने न कभी अपनी ढलती उम्र का दखा और न कभी जर्रा-जर्रा बिखरते शरीर की परवाह की। मकान बनाने की योजना भी बच्चो के भविष्य बनाने के पर्दे के पीछे छिप गयी थी।

एक दिन वह अलमारी मे रखे कागज-पत्तरो की सफाई कर रहे थे। कोई बहुत पुराना कागज उनके हाथ मे आ गया। समय ने उस पर अपना पीला रग चढा दिया था। वह जानकी बाबू की मैट्रिक की सनद थी। प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण जानकी बाबू ने इस कागज के टुकडे की सिफारिश से अपना क्लर्की का जीवन शुरू किया था और अपनी मेहनत तथा ईमानदारी के बल पर चीफ एकाउट आफिसर तक पहुचे थे। आज इसी कागज के टुकडे ने उन्हे एक कालखड समाप्त होने की सूचना दी। उनकी निगाह अपनी जन्म-तिथि पर चिपकी थी। वह सोच रह थे, पैंतीस वर्षों की नौकरी का नाटक अब अतिम चरण मे पहुच चुका है। साल-सवा साल बाद पटाक्षेप हो जायेगा। उसके बाद उसके बाद वह भविष्य के धुधलके म खो गये।

उन्हे धक्का-सा लगा। आज का कमानेवाला कल बेकार समझा जाने लगेगा। उसकी उपयोगिता शून्य हो जायेगी। वह पराश्रित हो जायगा। आधुनिकता का रग चढते परिवार मे उसकी स्थिति कैसी होगी। बाह्य चमक-दमक स चकाचौध सतान उसे सहन कर भी पायेगी। कल तक जो औलाद उसके सहारे पली बढी, वह उसी औलाद पर निभर हो जायेगा। अब तक वह घर का एक ऐसा स्तभ था जिसके बिना घर की कल्पना नही की जा सकती। गृहस्थी की छत, जिसके नीचे उसका भरा पूरा परिवार है उसके कधो पर टिकी है। जल्दी ही वह समय आन वाला है जब उसे अक्षम मानकर आहिस्ता से उसे हटाकर तीनो लडके अपन कधे इस छत के नीचे लगा देंगे, कितनी असहनीय स्थिति होगी तब ? आज तक उसकी हर बात अकाट्य थी। उसका हर निणय अतिम था। पत्नी तक म साहस नही था उसकी बात बदलने का, लेकिन स्वामित्व बदलते ही उसकी स्थिति वैसी ही हो जायगी जस दिवालिया मालिक की मकान कुक हो जाने पर।

इस मारक स्थिति से बचने के लिए जानकी बाबू ने इस मकान की सरचना की। जिन लालसा का वह सारी उम्र दबाये रहे, वह बुढापे के कगार पर आकर पूरी हुई। भविष्य निधि का एक बडा भाग इस बनान मे व्यय हो गया। मकान

बनवाते समय उन्होंने उस हर सभावित परेशानी का ध्यान रखा था, जो बुढापे और परिवार के कारण होती है। मकान मे उनका अपना अलग फ्लैट था। ताकि अगली पीढी के लोग उन्हे अपनी स्वतत्रता मे बाधक न समझें।

मकान बनाने के कुछ समय बाद जानकी बाबू रिटायर हो गये। वे अपने विभाग मे सदा एक कतव्यनिष्ठ एव ईमानदार व्यक्ति के रूप म जाने गये थे। उनके सबोर्डिनेट्स को वसा ही दुख हो रहा था, जैसा बेटे को बाप से बिछुड़ने से होता है। उसके सीनियस को एक अच्छा सहकर्मी बिछुडने की टीस-सी महसूस हो रही थी। लेकिन कानून, कानून है। निमम, लकीर का फकीर। उसे आदमी की अच्छाई-बुराई से कोई सरोकार नही। उसकी दृष्टि म जानकी बाबू अब नौकरी करने योग्य नही रहे थे। यद्यपि अपने देश मे राजनीतिज्ञो का अभ्युदय इसी उम्र से होता है।

जानकी बाबू ने रिटायरमेट से पहले ही निश्चय कर लिया था कि वह सारी उम्र कोल्हू का बैल बने रहे। सेवा निवृत्त होते ही वह यशोदा के साथ तीर्थ-यात्रा करेंगे। जीवन के शेष दिनो को वह मन की शाति के लिए अर्पित कर देंगे। उन्होने सात धाम सप्तपुरी की यात्रा की। हरिद्वार उनकी यात्रा का अतिम पडाव था। वह भोर होते ही यशोदा के साथ हर की पैडी पहुच जाते। स्नान करते, ध्यान लगाते। फिर सत्सग मे चले जाते। दिन भर धार्मिक पुस्तको का अध्ययन करते। यशोदा को पढकर सुनाते शाम को वह फिर सध्याकालीन प्रायना के लिए मदिरो मे चले जाते।

एक दिन वह स्नान कर कपडे बदल रहे थे। यशोदा नहाने के लिए गगा म उतरने वाली थी कि पहली पैडी से पैर फिसल गया। शोर मच गया। जानकी बाबू नगे बदन ही गगा की आर लपके। तब तक दूसरे नहाने वालो ने पानी की तेज धारा मे लुढकती, डूबती-तैरती यशोदा को पकड लिया। बाहर निकालकर उसके पेट से पानी निकाला। वद्ध शरीर, पत्थरो से टकराकर वह अधमरी हो गयी थी। उसे अस्पताल ले जाया गया। वह दो दिनो तक मौत मे जूझती रही। जानकी बाबू ने बड़े लडके को 'ट्रककाल' किया। जानकी बाबू हैरान रहे गये। वह अकेला आया था। तीनो बहुओं मे से कोई साथ न थी।

अत में डॉक्टर अपनी कोशिशो मे नाकामयाब रहे। दिमाग मे चोट लग जाने से यशोदा को होश नहीं आया और वह चल बसी। रविकात ने अन्य परिवार जनों को बुलाना भी उचित न समझा। कह दिया—'बाबूजी, जो होना था, सो हो गया। अम्मा कितनी सौभाग्यशाली हैं जो पवित्र स्थान की गोद मे उन्होंने अतिम शरण पायी।'

जानकी बाबू कुछ नही बोले। बस उन्होंने एक बार कातर दृष्टि से रविकांत

को देख भर लिया। उनका मन अंदर से रो पड़ा। क्या इसी औलाद के लिए वह सारी उम्र खटते रहे हैं। एक ठण्डी सांस लेते हुए उन्होंने बस इतना ही कहा—'जैसा ठीक समझो, करो।'

अंतिम संस्कार के बाद रविकांत ने जानकी बाबू से घर चलने का आग्रह किया। मगर न जाने क्यों उन्हें उसके आग्रह में औपचारिकता की बू महसूस हुई। उन्होंने रविकांत को लौट जाने को कह कुछ दिनों वहीं रहने की इच्छा प्रकट की।

यशोदा के न रहने से जानकी बाबू को अपने भीतर से कोई चीज निकल जाने जैसी अनुभूति हो रही थी। वह अपने को अधूरा-अधूरा-सा महसूस करते थे। आदम की उदासी दूर करने के लिए हौवा का निर्माण हुआ था मगर हौवा बीच सफर में छोड़कर चली गयी। आदम आज फिर अकेला था, उदासी ओढ़े। जीवन के बीहड़ पथ पर चालीस साल तक एक साथ यात्रा करने की खट्टी-मीठी अनुभूतियां उन्हें कभी गुदगुदाती, कभी सालती। परिवारजन उन्हें ऐसे लग रहे थे, जैसे रास्ते में दृष्टि की क्षितिज पर जाते हुए अन्य यात्री। वह चाह कर भी उन्हें पकड़ नहीं पायेंगे। उनके पैर जीवन भर यात्रा करने के बाद इतने थक चुके हैं कि वह फासला तय नहीं कर पायेंगे। उन तक कभी नहीं पहुंच पायेंगे। फासला बराबर बना रहेगा। उन्होंने मन की शांति के लिए वहीं बने रहना उचित समझा। वह साधु संन्यासियों के आश्रमों में प्रवचन सुनने जाने लगे।

नये किरायेदार मिस्टर मल्होत्रा के बाबा' के जन्मदिन की पार्टी खत्म हुई। मेहमान विदा हो गये। तब कहीं रविकांत को जानकी बाबू की सुधि आई। एक बज रहा था। जानकी बाबू थककर ऊंघने लगे थे। रविकांत पत्नी से बोले—'शचि, अनर्थ हो गया। बाबूजी की खैर खबर लेना तो भूल ही गये। हमने उनका फ्लैट तो किराये पर चढ़ा ही दिया। तुम उनके लिए स्टोर ठीक कर दो। छोटी बहू से कह दो तब तक उनके लिए खाना लगा दे।'

जानकी बाबू की तो पहले ही भूख मर चुकी थी। फिर यह खाने का समय भी नहीं था। साधुवृत्ति धारण करने के बाद से वह संध्या समय अल्पाहार करने लगे थे। अनिच्छा से उन्होंने दो चार कौर कड़वी दवा की तरह गले से उतारे। छोटी बहू और खाना लेकर आई तो उन्होंने गर्दन नीची किए, बिना कुछ कहे बर्तन उसकी ओर सरका दिये। छोटी बहू बर्तन लेकर चली गयी। जानकी बाबू बिस्तर पर पसर गये। मुलायम बिस्तर उन्हें ऐसा लग रहा था, मानो वह पत्थर की शिला पर लेटे हों। स्टोर की तंग दीवारों के बीच उनका दम घुट रहा था। उन्होंने अपने और यशोदा के लिए जो फ्लैट बनवाया था, कितना खुला था। लैट्रिन और बाथरूम तक उनके सोने के कमरे के साथ अटैच

थे। ताकि हाथ पैर थकने पर उन्हें किसी का मुहताज न होना पड़े। यशोदा तो आजाद हो गयी। उसे किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं रही। लेकिन वह माडर्निटी का ताना बाना बुनते इस परिवार में वह जाले में फसे कीड़े की तरह छटपटाने के लिए रह गये। न जाने क्या-क्या देखना किस्मत में बदा है! वह कुढ़ रहे थे। कलप रहे थे, वह क्यों फंसे परिवार के व्यामोह में? स्वर्ग आश्रम में कितनी शांति थी।

रात धीरे धीरे खिसक रही थी। उन्हें लघु शंका हुई। उठे। बाहर घुप्प अंधेरा था। बुढ़ापे की राख चढ़ी आंखों से कुछ सुझाई न दे रहा था। वह अनुमान के आधार पर अंधेरे में टटोलते-से आगे बढ़े। बाथरूम का दरवाजा मिल गया। वह फारिग होकर चलने लगे तो पैर फिसल गया। दीवार का सहारा लेने की कोशिश की, मगर संभल नहीं सके। गिर गये। सिर फर्श पर जा बजा। मूर्छा आ गई।

नीम होश हुआ। काफी दर्द था। लेकिन अंतस में उठती पीड़ा से कम। वह शरीर से गुसलखाने के फर्श पर लुढ़के पड़े थे, मगर मन उड़ता हुआ एक बार फिर स्वर्ग आश्रम के गीता भवन में जा पहुंचा। पद्मासन लगाये स्वामी परमेश्वरानंद प्रवचन कर रहे थे—'यह शरीर मकान है और जीव-आत्मा इसमें निवास करती है। लेकिन जिस दिन बैरन मत्यु आती है, तो जीव-आत्मा इसे त्याग ब्रह्मलीन हो जाती है। सो हे भक्तों, जब यह शरीर रूपी मकान ही अपना नहीं तो यह सब छल-कपट, मोह ममता, किसके लिए और क्यों?'

जानकी बाबू को घोर पीड़ा हुई। पीड़ा को झेलने की कोशिश में उन्होंने पोपले मुंह से होंठ दबा लिये। मगर झेल नहीं पाये। मूर्छित होते हुए उनके होंठों से निकलने लगा—'यह घर मेरा नहीं मेरा घर नहीं घर नहीं।' आकाश में एक तारा टूटा और दूर तक प्रकाश की रेखा खींचता चला गया।

बदला हुआ आदमी

आज जो महायुद्ध हुआ, उसने पिछले सभी महायुद्धो को पीछे छोड दिया। प्रत्येक महीने के अतिम दिनो मे ये अनचाहे महायुद्ध मेरे परिवार पर मडराने लगते हैं और जैसे ही अनुकूल वातावरण मिलता है, ये कहर बरपा कर डालते हैं।

'मुन्नी की चप्पल टूट गयी है जी।'

'तो मैं क्या करू ?'

दो दिन बाद—

'राशन के लिए पैसे नही हैं।'

'मैं कहा से लाऊ ?'

अगले दिन—

'बडकू आज स्कूल नही गया। कहता है, मास्टरजी बेंच पर खडा कर देते हैं। जब तक वर्दी नही सिलेगी, वह स्कूल नही जायेगा।

'न जाय। तनख्वाह से पहले वर्दी नही सिल सकती।'

उससे अगले दिन—

'निक्की बीमार है।'

मैं डॉक्टर हू ?' चिढकर मैं तिक्त स्वर मे उत्तर देता हू और वह भी भुनकर विस्फोट करती है—

'मैं कहती हू, तुम हर बात का दो-टूक जवाब देकर बेबाक हो जाते हो। मैं कहा से लाऊ इन सबके लिए ?'

तुम ही बताओ, मैं कहा स लाऊ ? महीन मे तनख्वाह एक बार मिलती है। वह सारी-की-सारी लाकर तुम्हारे हाथ पर रख देता हू।'

तुम हाथ पर रखकर छूट जाते हो और मेरी महीने भर जानखपाई होती है।'

'फिर मैं क्या करू ? चाय तक नही पीता हू। काम पर पदल जाता हू। पचास पैसे के छोलो से रोटी खाता हू।'

'तो मैं ही चाट-पकौडी खाती हू ? दिन भर गुलछर्रे उडाती हू ?

उसके स्वर मे कचोट थी ।

'बकवास बद करो ।' मैं झल्ला जाता हू, 'मैं इससे ज्यादा नही कमा सकता । तुम कमा सकती हो कमा लाओ ।'

'मुह सभालकर बोलो जी । मद होकर कैसी बात करते हो ।'

उसने 'मद' कहकर मेरे मुर्दा हुए मद को जीवित कर दिया ।

जबान लडाती है ? मेरे मुह से एक भारी भरकम गाली फिसल जाती है । आखिर मद बच्चा हू न मैं । स्त्री को जूती समझन वाल समाज का ।

बस, वाग्वाणो स युद्ध शुरू होकर लात घूसो स समापन होता है । आजिज आ गया हू रोज की इस चखचख से । जीने का सारा मजा किरकिरा हो गया ।

हारा-थका मैं बाहर निकल जाता हू सडको की निरुद्देश्य खाक छानता हू । नित्य की यह कहानी इतनी बासी और बेमजा हो गयी है कि पडोसियो ने हमारे बद किवाडो मे कान लगाने बद कर दिये है । लौटता हू तो सब सोये होते हैं । बच्चो के कपोलो पर सूखे नदी-नालो के चिह्नो से साफ जाहिर होता है कि कुम्हारी की कुम्हार पर पार नही बसाई ता इन मासूमो की गाल सिकाई की है । मैं निरीह बना तटस्थ भाव स बच्चो के निर्विकार चेहरो को देखता रहता हू । चटाई पर लुढकी पत्नी का भोला चेहरा मेरे अतस म कही सुइया चुभान लगता है । सोचता हू, इस गरीब का क्या कसूर ? जिस अनुपात म परिवार बढा है, आमदनी नही बढी । ऊपर स महगाई की मार । बस, प्यार उमड आता है । पूव घटित सारी घटना को मन से धकेल देता हू और उसके गाल पर बन अपनी उगलियो के निशानो का सहलान लगता हू ।

इन अभावजनित महायुद्धो ने पत्नी को जीवित लाश बना दिया है । मेरे कर-स्पश स वह जाग जाती है । कहती कुछ नही । वह सूनी आखो से दखती भर रहती है और मेरी स्मृति म बीस साल पहल की पत्नी आ बैठनी है । भोली भाली एकदम मासूम ।

बीस साल—

एकदम जवान हो जाता हू मैं । जवान ही नही बीस की वय के आसपास का किशोर । जिसकी मूछ-दाढी म मुलायम पश्म लहराती है । अठारहवा ही तो लगा था, जब मा ने स्वग जान की तैयारी की थी और पिताजी को घर सभालन क लिए एक गहस्वामिनी की आवश्यकता महसूस हुई थी ।

बहू आई । चम्पाकली । चम्पा की कली ।

मारी बारात थड क्लास के डिब्ब म ठुसी थी और मैं बहूरानी के साथ स्कड लास'[1] म बिठाया गया था । भीड स अलग । गाडी छूटने तक दिल धक धक् करता

---

[1] आजादी स पहले फस्ट, सकेड, इटर और थड क्लास—चार दर्जे होत थे ।

रहा। चम्पा घूघट मे थी। मुझे उसका मुख देखने की उत्सुकता थी, कि कब गाडी चले और कब मैं घूघट म झाकू। गाडी का स्टॉपेज टाइम पाच मिनट पाच घटे लग रहा था।

खैर! सिगनल की हरी आख ने गाडी को खिसकने का इशारा किया। पहिये घूमे और प्लेटफार्म छूटते ही मैंने बथ बदला। फासला कम हुआ। दुल्हन से सट कर बैठ गया मैं। सारे गात म एक अजीब सिहरन व्याप गयी। कापते हाथों मैंने घूघट छुआ। लाज के मारे उसने पल्ला दबोचना चाहा। लेकिन मैंने पल्ला पलट ही दिया। मैं गद्‌गद हो गया। उजाला-सा हुआ। चम्पा का चम्पई रूप छिटक गया। मेरे होठो से निकल गया—'सुभान!' सुतवा नाक के दायें-बायें दो स्टेनलैस स्टील की कटोरिया जैसी आभा वाली आखें काली पलको के बीच बिजली-सी कौंध कौंध जाती थी। आपा खो बैठा मैं और वह भी। शरारत-दर शरारत। मैंने प्यार की मोहर अकित करना चाहा तो उसन उगली से सकेत कर बरज दिया। सामने डिब्बे के दूसरे कोने मे बैठा एक जोडा हमारी चुहलबाजी का आनन्द ले रहा था। शायद उनका विवाह भी ज्यादा पुराना नही हुआ था। पर कमाल तो देखिए औरत खो जाने के क्षणो मे भी कितनी सतक रहती है।

चार घटे का सफर मिनटो में यू कट गया, मानो अभी शुरू हुआ हो। जी चाह रहा था कि सफर लम्बा होता रहे और ट्रेन बिना कही रुके यों ही दौडती रहे। मगर स्टेशन आ चुका था और हम यहा उतरना ही था। चम्पा का चेहरा पुन पर्दे मे छिप गया। बाहर स्टेशन की बत्तिया टिमटिमाने लगी थीं और बढ़ते सुरमई अधेरे का धकेलने का असफल प्रयास कर रही थी।

स्टेशन से बाहर आये तो 'पोहन' तैयार थे—ताग, रब्बे, छकडा और रथ। तागे रब्बो मे बराती चढे और छकडे मे सामान लदा। चम्पाकली और मैं रथ मे बैठे। बैलो को टिटकारा गया। 'जगो' की झकार और बैलो की 'चौरासियों' के घुघरुओ की रुनझुन से वातावरण गुजरित हो उठा। रथ बीच मे था। कुछ दूर चलने पर रथवान सुक्का पहलवान ने मुझे पुकारा—'भइये, कटोरदान के लडडू खिलाओ।'

मुझे अच्छी तरह याद था कि गाव के रिवाज के मुताबिक विदाई के साथ दुल्हन के साथ लड्डुओ का कटोरदान दिया गया था और चम्पाकली ट्रेन तक में उस अपने साथ रखे हुए थी। यहा रथ म भी कटोरदान उसके साथ था। मैंने अधेरे मे कटोरदान टटोला। चम्पाकली ने उस कसकर पकड लिया और धीरे स बोली 'नही मा न कहा था कि यह घर जाकर ही खुलेगा।'

मैंने उसकी बात रथवान तक पहुचा दी। सुक्का चहका—'लगता है, बोहडिया बडी सुघड है। भइय को मोह लिया है। अभी स जोरू के गुलाम न बनो, भइये! कटोरदान के लडडुओ म पहला हक म्हारा होवे है।

मेरे पौरुष पर चोट हुई। मैंने चम्पा से कटोरदान झटक लिया। चार लड्डू निकालकर सुक्का को थमा दिये। वह लड्डू गपकता हुआ बोला—'शाबस ! मरद के बच्चे मरद हो। वैसे चार लड्डुओं से अपना का होवे है। पर चलो, मुह तो मिट्ठा हो ही गया।'

शायद वह और भी फरमाइश करता, मगर पोहनों की दौड़ शुरू हो गयी। भला सुक्का पहलवान पीछे रहने वालों मे कहां था। ऐसे मौको के लिए ही तो बैलो को घी पिलाया जाता है।

गृहस्थी का पहिया घूमना शुरू हुआ। आनन्द के दिन जल्दी ही तिरोहित हो गये। जिम्मेदारियो ने दहलीज झांकना शुरू कर दिया। हाई स्कूल करते ही पढ़ना छोडना पड़ा। आगे शिक्षा जारी रखने की घर में गुजाइश नही थी। पिताजी ने लागो के हाथ जोड मिन्नतें कर एक प्राइवेट फर्म मे मुझे नौकरी दिलवा दी। मा अपनी उत्तराधिकारिणी को घर-द्वार समलवा इहलौकिक लीला से छुट्टी पा गयी। कुछ दिन बाद पिताजी भी मेरे सिर पर बुजुर्गी की पगडी बधवा गये। जीने का सारा मजा किरकिरा हो गया। चम्पा ने बड़ी-बूढ़ियो का चोला पहन लिया और मैंने भी असामयिक प्रौढता ओढ़ ली। बच्चो न घर की चौखट क्या देखी, एक-दूसरे का हाथ पकडे दौडे चले आए। बडी सीता, छोटी नीता इससे छोटी गीता। तब कही रन्नू का नबर आया। हर साल वेतन मे अपना भाग बटाने वाला की सख्या तो बढी, मगर वेतन वही जाम रहा। क्या हुआ जो पाच रपल्ली साल की तरक्की हो जाती थी।

गृहस्थी का ढाचा चरमराने लगा। हाथ तग। मैं दग। कैसे चला पाऊगा गृहस्थी की इस लचर गाडी को। धीरे धीरे चम्पा का स्वास्थ्य और रग रूप छीजने लगे। मेरे कल्लो की हड्डिया उभर आयी। तीसवा पार करते करते हम बुढिया गए। बच्चे पढन लगे। खर्च बढता गया। कर्ज चढता गया। और धीरे धीरे महायुद्धों ने जन्म लेना शुरू कर दिया। गृहस्थ का स्वर्ग नरक में तब्दील हो गया।

आज का महायुद्ध अन्य दिनो के युद्धो से भीषण था। मेरे क्रूर प्रहारो से चम्पा अदर-बाहर सभी ओर से आहत हुई थी और उसने साधारण नारी की तरह मैके चले जाने की धमकी दे दी थी। शुक्र है कि उसने मिट्टी के तेल की उपयोगिता का सहारा नहीं लिया। मैंने भी आजिज आकर ससार का दुखो का घर मान गृह त्याग कर साधु-सन्यासी बनने का निर्णय कर लिया।

आधी रात टूट रही है। चाद साठ अश पर चमक रहा है और उसकी चांदनी कमरे म साई चम्पा के वक्ष से होती हुई उसकी बगल म साये रन्नू पर पड रही है।

कितना मासूम चेहरा है उसका। बिलकुल भोला। मैं उसके चेहरे को एकटक देख रहा हूं। कल सुबह जब वह मुझे नहीं पाएगा तो कितने सवाल पूछेगा चम्पा से। रात में नींद नहीं आएगी तो वह भी कहानी सुनाने की जिद्द करेगा। फिर किसी कवि का लिखना पड़ेगा— मां, कह एक कहानी चम्पा खीझ कर कहेगी—'बेटा, समझ लिया क्या तूने मुझको अपनी नानी ?'

मेरी आंखों के कोर भीग जाते हैं। मोह छलने लगता है। लेकिन जब घर से जाना तय कर ही लिया तो क्यों फसूं मोह ममता के जाल में। मैं एक झटके में जाल तोड़ता हूं। आहिस्ता से किवाड़ खोलकर बाहर गली में आ जाता हूं। मुझे लगा कि मैं सिद्धार्थ हो गया हूं। कभी उसने भी राहुल और यशोधरा को ऐसे त्यागा होगा। एक रिक्शा गली के कोने पर खड़ा दिखाई देता है। मैं लपककर रिक्शा के पास पहुंचता हूं और सीट तथा चालक की गद्दी की शय्या बनाकर सोते हुए रिक्शावाले को उठाता हूं—'उठो छंदक ! मैं आ गया हूं।'

रिक्शावाला कच्ची नींद से आंख मीढ़ता हुआ उठता है और अपना नया नाम सुनकर मेरी भूल सुधार करता है—

बाबूजी, मेरा नाम छंदक नहीं, रमेश है।'

ओह ! भूल हुई।' मैं गलती मान लेता हूं। वह सीट ठीक करता है। मैं रिक्शे में बैठ जाता हूं और कहता हूं—'चलो।'

कहां ?' रिक्शावाला हैंडिल पकड़कर रिक्शा धकियाता है।

मैं मन ही मन सोचता हूं कि कहां जाना है। यह तो मैं भी नहीं जानता। यह रिक्शावाला भी निरा बुद्धू है। क्या छंदक ने भी कभी ऐसे ही पूछा होगा। झल्ला कर कहता हूं— सीधे चलो।

अनपेक्षित एवं अटपटे उत्तर पर रिक्शावाला तनिक गर्दन झटकता है और पैडिल पर पांव रख आगे बढ़ने लगता है। शहर सोया है। कहीं इक्का दुक्का आदमी सड़क पर दिखाई देता है और मैं अपने में समाया हूं। कभी बीवी-बच्चे के बारे में सोचता हूं तो कभी अनजानी मंजिल के सूत्र पिरोने लगता हूं।

इस समय रिक्शा शहर के आलीशान बाजार से गुजर रहा है। एक भव्य होटल से दो नवयौवना नमूदार होती हैं। उनमें से एक का हाथ हवा में लहराता है—'टक्सी !' सामने से आती टक्सी सड़क की बगल में आकर रुक जाती है। वे दोनों उसमें सवार हो जाती हैं। मैं हैरानी से रिक्शावाले से पूछता हूं— इतनी रात गये ये लड़कियां होटल में क्यों आयीं ?'

कालगर्ल हैं। रिक्शावाला अर्थपूर्ण स्वर में बोला— बाबूजी सब चलता है। जो जितना बड़ा है। उसे उतनी ही धन की भूख सताती है। ये सब खाते पीते घरों की लड़कियां हैं।'

'हूं।' मैं सोचता हूं—'कैसा जमाना आ गया। पूरा समाज अर्थ पिपासा से तड़प रहा है। चाहे वह झोपड़ी वाला हो, चाहे ऊंची हवेली वाला हो।'

तभी रिक्शा की बगल से एक मूंगिया रंग की कार सर्राटे से गुजर जाती है और चौराहे में पहले टैक्सी को ओवरटेक कर सड़क के बीचों-बीच रुक जाती है। रास्ता न मिलने से टैक्सी भी रुक गयी। कार से तीन युवक उतरते हैं और टैक्सी का दरवाजा खोलकर लड़कियों को बाहर खींच लेते हैं। उनमें से दो के हाथ में चमकते हुए चाकू हैं। लड़कियां चीखना चाहती हैं। पर उनकी चीख नहीं निकलती। वे भयभीत हो जाती हैं। एक लड़का उनके पर्स टटोलता है। चाकू वाले उनके गलों की जंजीरें और कानों के 'ईयर रिंग' उतरवा लेते हैं।

देखने वालों को सांप सूंघ जाता है। कोई नहीं बोलता। कुछ क्षणों में ही यह सारी घटना घटित हो जाती है। मैं उद्विग्न हो रिक्शावाले से पूछता हूं—'छेदक यह सब क्या है?'

'चुप रहो, बाबूजी! जान प्यारी नहीं है क्या? ये सब लड़के सुशिक्षित बेरोजगार हैं। जो रात में राहजनी करते हैं।' उसने घटना स्थल से पहले वाले बिजली के खंभे के साथ रिक्शा खड़ा कर दिया था। वह एक क्षण रुककर बोला—'बाबूजी, सब मेरी तरह थोड़े ही हैं। ग्रेज्युएट हूं, नौकरी नहीं मिली, रिक्शा खींचता हूं।'

मैं चौंक गया। वह गंभीर हो गया। मैंने हैरत में पूछा—'तुम पढ़े लिखे हो?'

उसने अपनी सीट के पीछे इशारा करते हुए कहा—'आपको विश्वास नहीं हो रहा। प्रमाण के लिए कागज का यह टुकड़ा, जिसे पाने के लिए सारा घर बर्बाद हो गया, मैंने फ्रेम करवा कर यहां जड़ दिया है ताकि मेरे देश के लोग इस रद्दी कागज का महत्त्व जान सकें।'

उसके स्वर में अथाह पीड़ा थी—'बाबूजी, मां के गहने बिके। बाप की पांच बीघे जमीन गिरवी रखी गयी। तब कहीं पाया यह कागज। जिसने न रोटी दी और न कपड़ा मकान। तीन साल तक इम्पलायमेंट एक्सचेंज में कार्ड की तारीखें बदलवाता रहा। मगर साली 'कॉल' कभी नहीं आई। मेरे पास उन लोगों की मुट्ठी गर्म करने को पैसे जो न थे।

'बस भूखों मरने से रिक्शा चलाना बेहतर समझा। आठ दस कमा लेता हूं। किसी की चाकरी नहीं। पाबंदी नहीं।'

उसके कहने पर मेरी दृष्टि उसकी गद्दी के पीछे गयी। सचमुच उसकी बी० ए० की सनद शीशे में लगी थी। उसने द्वितीय श्रेणी में परीक्षा पास की थी।

मेरे अंदर बिजली कौंध गयी। मुझे लगा, मैं कायर हूं। जिम्मेदारियों से भागना सबसे बड़ी कायरता है। मुझे अपनी गरीबी से संघर्ष करना चाहिए। बीवी-बच्चों को छोड़कर भागने का अर्थ है, उन्हें भूख से तड़पा कर मारना। मैंने धीरे

से पूछना शुरू किया—'भाई छदक ! !'

उसने बीच मे टोक दिया—'बाबूजी आप फिर मेरा नाम गलत ले रहे हैं ।'

'सॉरी !' मैंने खेद प्रकट कर कहा—'तुम मुझे रात मे घटे-दो घटे के लिए रिक्शा दे सकते हो ?'

'आप रिक्शा चलायेंगे ?' रमेश ने आश्चर्य से आखें मेरे चेहरे पर गडा दी।

'रिक्शा चलाना अच्छा नही है क्या ? फिर तुम क्यो चलाते हो ?'

रमेश बहुत समझदार था। वह मेरा तर्क समझ गया और मुस्कराकर बोला, 'बाबूजी, काम कोई बुरा नही होता। आप मुझे उसी जगह मिल जाया करना। मैं रिक्शा द दिया करूगा। इस बहाने मुझे थोडा आराम भी मिल जाया करेगा।'

'ठीक है। रिक्शा वापस ले चलो।' मैंने उससे कहा। घर की ओर लौटते हुए मुझे लग रहा था कि मैंने वह सिद्धि पा ली है, जिसकी खोज मे मैं घर से निकला था। मरे मन की काई धुल चुकी थी और अब मैं एक दूसरा नया आदमी था।

अधेरे की चादर

एक उमस भरी उदास साझ। बिजली नहीं है।

दो मांजले पर एक स्त्री-पुरुष चारपाई पर बैठे हैं। पुरुष के हाथ में कोई पत्रिका है और स्त्री के हाथ मे एक छोटी-सी पखी है। उनकी पीठ गली की ओर है और मुह कमरों के खुले किवाडों की ओर। गदन तक उनके शरीर का भाग आगन के चारों ओर लगी सीमेंट की जाली न ढक रखा है। स्त्री-पुरुष मे कभी कोई सवाद हो जाता है और बीच-बीच मे पुरुष पत्रिका और स्त्री पखी से हवा करने लगते है। एक अजीब-सी खामोशी भरा वातावरण है। कोई रौनक नहीं, केवल दो चुकते हुए प्राणियों के होंठो की नीम फडफडाहट चुप्पी का जाला तोड देती है।

बिजली अब भी गुल है और हल्का-हल्का अधेरा धरती पर उतरने लगा है।

'क्योजी, आगे क दिन कैसे कटेंगे ?' स्त्री न अति क्षीण स्वर में पूछा। उसके कठ से फूटे बोल कुए की अतल गहराई से आते लग। पुरुष पूवत मौन धारण किए रहा। मानो उसने अपनी सगनी के शब्द सुने ही नहीं। वह शरीर से उसके पास बैठा था। किन्तु मन कही दूर था—बहुत दूर। पन्द्रह दिन पहले तक उसकी अलग सजीव दुनिया थी। जिसमे ठहाके थ, गपशप थी, तक वितक, कुतक सब कुछ थे। वह एक सम्माननीय कुर्सी पर आसीन था। एक बडे दैनिक के सपादक की कुर्सी पर। जहा दश था, विदेश था। पूरी दुनिया का वृहत् कैनवास था। जिस पर उसकी ओजस्वी लखनी स शब्दो की खुशनुमा पेंटिंग उभरती थी। सुबह की पलकें खुलत ही लोग दिनचर्या का शुभारम्भ उसके गरिमामय अग्रलेख और फीचर्स के रसास्वादन से करते थे। राजमहल के हडकप स झोपडी के टिमटिमात दीय तक किस पर नही लिखा उसने। निर्भीक, निष्पक्ष पत्रकारिता का आदश नमूना था वह। जिसके लिए उसने जोखिम भी उठाये और इनाम सम्मान भी पाये। उसकी लखनी मे केवल शुष्क पत्रकारिता ही नही थी, वह सत्साहित्य का मर्मज्ञ और कला का पारखी भी था। वह कथा-कविता का सुविख्यात बुद्धिजीवी भी था। उसक कविता सग्रह 'तरगिणी' पर कई छाटे-बडे पुरस्कार भी मिल चुके थे। उसे अपन अतीत पर गव

था और वर्तमान के प्रति आश्वस्त था कि वह सारा समय साहित्य साधना म लगा सकेगा।

'क्या सोच रहे हो जी!' स्त्री ने अपने प्रश्न का उत्तर न मिलने पर पुन पूछा।

'कुछ नहीं।' पुरुष न सहजभाव से झूठ बोल दिया। और झूठ को पकडते हुए स्त्री ने तनिक मुस्करा कर कहा—'सुना तो यह था कि सोता हुआ आदमी झूठ बोलता है, लेकिन मुझे लगता है, विचारों म खोया आदमी भी सच नहीं बोलता।'

'रानी, विचारो म डूबा आदमी भी सोये के समान होता है। वह अपन आसपास की दुनिया से बेखबर होता है और जब उसके विचारो मे ककडी फेंकी जाती है तो स्वभावत वह भी सोये आदमी का धर्म निभा देता है। नकार का झूठ चट से उसके होठो म फिसल जाता है।' पुरुष ने स्त्री के कथन की व्याख्या की।

'इन निगोडे बिजली वालो ने भी नाक म दम कर रखा है। दिन भर म दस बार बत्ती जाती है।' स्त्री ने शिकायती स्वर म कहा।

शिकायत वाजिब थी। लेकिन वहा न कोई बिजली वाला सुनने वाला था और जिससे शिकायत की गयी थी, वह भी सुन नहीं रहा था। पुरुष फिर स ध्यानस्थ हो गया था। रिटायर होने के बाद आदमी की हस्ती कितनी अकिंचन हो जाती है। जिस अखबार को बद होन की स्थिति से उबारकर राष्ट्रीय स्तर पर लान म उसन अनेक जोखिम उठाये, उसी ने सबसे पहले बेरुखी अख्तियार कर उसे ढला हुआ सूरज होने का अहसास कराया। पहले झटके म गाडी विदा हुई। तीन दिन बाद टेलीफोन उठ गया। फिर व सब लोग धीरे धीरे आने कम हो गये, जो उसके सपादक रहते उसकी अनुकम्पा को लालायित थे, जिन्हें उसकी आखो म अपना भविष्य लहराता जान पडता था। उसका सहायक कपूर तो दिन म दो बार उसकी कोठी पर जरूर हाजिरी देता था। शायद वह मालिको स सिफारिश कर उसे अपनी कुर्सी बकशवा जाए। मगर जब उसन सुना कि नया सपादक कोई मिस्टर पपलियाल आ रहा है तो उसन भी तोते की भाति आख बदल ली और कम्पनी की कोठी छोड जब वह अपने मकान म आ गया तो कपूर के फिर कभी दर्शन नहीं हुए।

'ऐ जी। यो गुमसुम क्यो बैठे हो?' स्त्री ने पुन उसे टनकोरा।

'चुप बैठे रहन के सिवा और काम भी क्या है?' उसके स्वर मे पीडा थी। लेकिन वह अपनी पीडा स्त्री के सामने प्रकट कर उसे दु खी करना नहीं चाहता था। उसन मीठी चुटकी ली—'भाग्यवान, क्या सुहागरात की बात करू? और उसने स्त्री को आगोश म लेने का नाटक किया।

स्त्री तनिक लजा गयी। मुस्कराकर वह मुदित मन हो बोली—'हटो भी। दूसरी छत वाले लोग देख लेंगे। अब चुहल करने की उम्र रह गयी है क्या?'

लेकिन उमन पुरुष का हाथ नही झटका। जसा कि वह कभी अपने यौवन काल मे बहुधा किया करती थी। 'छोडो भी, नहीं जाग जायगी।' अथवा 'कोई देख लगा तो क्या कहेगा ?' जैसे लजीले वाक्य कहकर अपन को बधन-मुक्त करा लिया करती थी। लेकिन जीवन की होती साझ म 'दूसरे लागो के देख नैन' की लज्जा ने भी उस मुक्त होन को अधिक प्रोत्साहित नही किया अपितु एक सुखानुभूति ही हुई। जिसम बढती उम्र मे शिकायत थी कि अब वे छेडखानी के दिन हवा हुए।

पुरुष न मानो उसकी बात सुनी ही नहीं। उसने बायें हाथ मे स्त्री को थोडा-सा अपनी ओर खीच लिया। स्त्री ने वाद के बाद प्रतिवाद अथवा कोई विरोध नही किया। वरन शरीर पुरुष की इच्छा पर छोड दिया। मुग्धा नायिका की भाति उसका सिर पुरुष के कधे स जा सटा। दानो क हृदयो म एक अजीब सी हलचल थी। जो उन्होन वर्षों क बाद अनुभव की थी और उन्ह साफ महसूस हो रहा था कि अभी उनक अहसास जिंदा हैं। उस अद्ध नारीश्वर होत शरीर को अधेरे की चादर ने चश्मेबददूर से पूण सुरक्षित कर लिया था।

अतीत उन पर तारी था। मन मे अजीब-सी स्निग्धता थी। उनके बुढियाते दिला म एक भिन्न प्रकार की सरगम थी, युवा युगलों के दिल के तारा स बिल्कुल अलग। उन नैसर्गिक क्षणो की मिठास की चासनी शत प्रतिशत पकी हुई थी। एकाएक स्त्री ने उसमे अपन सुरील शब्दो का पागन हुए पूछा—'क्योजी, तुम आज भी मुझे उतना ही प्यार करत हो ?

भागोभरी, यह भी पूछन की बात है। असली प्यार तो इसी उम्र म शुरू होता है। जवानी म जिस लोग प्यार कहत ह उसम वासना बसी होती ह। स्वार्थ बसा होता है। उसमे एक-दूसरे को खाने की भूख होती ह। जिसे भ्रमवश लोग प्यार का नाम दे देत हैं। जबकि उसक पीछे एक-दूसरे का शोषण करन की उत्कट चाह रहती ह। कौन, कितना किसका सात्विक ढग स शोषण करन की कुशलता प्राप्त कर लिया ह, वही उस कथित प्यार का परिमाप मान लिया जाता ह।' पुरुष दार्शनिक मूड मे बाल जा रहा था।

'मुझे ता तुम्हारी ये उल्टी-सीधी बातें समझ नही आती।' स्त्री न बेबाक पल्ला झाड दिया।

'अरे! इतनी सीधी-सच्ची बाते भी नही समझती ?

'तुम्हार लिए होगी सीधी-सच्ची, मै तुम्हारी तरह सम्पादक तो रही नही हू, जो काट छाटकर सबको सीधी कर लू। मुझे तो सब जलेबी की तरह लगती ह।' और जलेबी शब्द ने न जाने क्यो उस थाडा-सा मुस्करान पर बाध्य कर दिया।

पुरुष को स्त्री के सीधपन पर ढेर सारा प्यार आ गया। अपने बायें हाथ की जकड को तनिक और कसते हुए बोला—'बावली, इतना भी नही समझती।

जवानी म सक्स सिद्धि ही प्यार का एकमात्र अवलबन होता है और सतान ब्याज रूप म मिलती है। वह पुराणों का जमाना रहा होगा, जब सतान प्राप्ति के लिए ही सेक्स की माग होती होगी। इस युग मे तो सच्चा प्यार ढलती उम्र म ही शुरू होता है। बता, अब तुझे मुझस क्या लेना दना है। फिर भी तुम मुझस चमडी की तरह चिमटी हो। तुम मुझे छोडकर अपन बडे सपूत के पास अमेरिका जा सकती थी, छोटे के पास बम्बई म रह सकती थी। वे कौन-सी सुख-सुविधा है, जो वहा न मिलती और यहा प्राप्त ह। क्यो चिमटी हो मुझस? नौकरी स रिटायर हो गया हू। शरीर से भी रिटायर ही समझो। फिर भी तुम मुझे छोडकर जाना नहीं चाहती। कौन-सा प्रलोभन तुम्ह मुझस बाधे है।'

'मैं क्या जानू?' स्त्री न छोटा-सा उत्तर द अपनी समझ के सकुचित दायरे का परिचय दिया।

'ऐसा नही कि तुम नही समझती। समझती हो, लेकिन अपन भावो को अभिव्यक्ति नही द पा रही हो। यही समस्या है तुम्हारे सामने, और तुम्हारे सामने ही नहा, हर साधारण व्यक्ति के सामने होती है। विचारा का अभिव्यक्ति कवल बुद्धिजीवी द पाता ह। वरना विचार और भाषा ता सभी के पास होते हैं। तुम भी उनम स एक हो। चालीस वर्षों स मैं तुम्हारे विचारो स परिचित हू। बहुत सुसस्कृत विचार हैं। किन्तु तुम उन्ह कभी सही ढग से व्यक्त करन म सक्षम नहीं हो पायी। यही कारण है कि सुशिक्षित एव सपादक की पत्नी होन के बाद भी साहित्य सृजन म दूर रह गयी। तुम्हार विचारा का लाभ मिला मुझे। मैंन उन्हे हार के मोतिया की भाति पिराकर जनता के सामन प्रस्तुत किया और यशस्वी हुआ। अब भी वही बात है। जा तुम्हारे मन म है, उस उपयुक्त शब्द दन क अभाव म केवल 'मैं क्या जानू?' कहकर इति कर देना चाहती हो। है न यही बात?'

स्त्री सच्चाई को झाकते हुए देख और मासूम बन गयी। बाली—'तुम तो हर बात पर दशन बघारने लगते हो। ये बिजली वाले भी न जान कहा सो गये। घटो हो गये बत्ती गये।

तुम बहुत चतुर हो। बिजली की बात उठा मुझे विषयातर करना चाहती हो। यदि बिजली होती तो तुम घर का काम निमटाकर चुपचाप खटिया पर पसर जाती और मैं किताबा म सिर खपात खपात सा जाता। कब मिलता इतनी अच्छी बाते करन का समय। हा, तो मैं प्रलोभन की बात कह रहा था। प्रलोभन है। जिस तुम कह नही पायी—पति पत्नी के प्यार का। जो तुम्ह अपने बट पाता क पास नही, यहा मिलना ह। इसीलिए तुम यहा हा और यदि मैं तुमस अलग होने की कल्पना करू तो शरीर म चमडी अलग करन जमी यत्रणा हागी। वास्तव म वृ पि म ही पति प नी एक दूसर की आवश्यकता होत ह। जो सुख दुख समान रूप म भागत हुए बुढाप का भार ढो लत ह।

'तुम इतने बूढ़े तो नहीं हुए, जो बार-बार बुढ़ापे की बात दोहराते हो।'

'लोगों ने मेरे नाम के साथ 'रिटायर्ड' शब्द जो लगाना शुरू कर दिया है।' पुरुष ने तनिक व्यंग्यात्मक लहजे में कहना शुरू किया—'कहने वाले कहते रहें, वैसे बुद्धिजीवी कभी रिटायर नहीं होता। वह आखिरी साँस तक सृजक और क्रियाशील रहता है। चूँकि वह क्रियाशील है, इसलिए बूढ़ा नहीं होता। लेकिन बूढ़ा होना साहित्यकार के लिए गौरव की बात है। जितने भी सर्वोच्च सम्मान पुरस्कार हैं, या तो उन्हें प्राप्त हुए हैं, जो दिवंगत हो गए हैं अथवा उन्हें दिए जा रहे हैं, जिनके पैर कब्र में लटके हैं। सच पूछो तो यह बड़ी मजेदार स्थिति है। सारी उम्र एड़िया रगड़ो और मरते के मुँह से पुरस्कार का मक्खन लगाकर ढोडी पीटो कि हमारा साहित्यकार तो घी खाता हुआ मरा है। कौन कहता है हमारे देश में साहित्यकारों की पूछ नहीं।'

'चलो, हटो। हर समय बुढ़ापा, मरना और रिटायर्ड की ही रट लगाये रहते हो।' स्त्री ने मीठी-सी झिड़की दी और पुरुष की गंगा-जमुनी दाढ़ी की खूँटियों पर अपनी हथेली फेरते हुए बोली—'कोई और अच्छी बात करो न।'

'देखो जी, सम्पादक हूँ, साहित्यकार भी हूँ। लिखना शुरू करूँ तो रात भर लिखता रहूँ। बोलना शुरू करूँ तो घंटों बोलता रहूँ।' स्त्री को तनिक प्यार से खींचकर पुरुष बोलता गया—'और तुम हो जाओगी बोर। सोचोगी, मैं सठिया गया हूँ।'

'अब तुम सम्पादक कहाँ रहे हो? उसमें तो हो गयी छुट्टी।' स्त्री ने हल्की-सी चुटकी ली—'रही साहित्यकार होने की बात, सो अब तक तुम दूसरों की रचनाओं में कतर-ब्योंत करते रहे और अब दूसरे तुम्हारे बुद्धिजीवी होने की लम्बाई मकारों में नापेंगे।'

'बड़ी दुष्ट हो। बात हवा में ले उड़ती हो। खैर! आओ, बिजली आने तक अपने बारे में बात करें।'

'अपने बारे में क्या बात करें जी। मुझे तो सब सूना-सूना लगता है। हम दो प्राणी रह गए हैं इतने बड़े मकान में। मैंने तो बहुतेरा कहा कि प्रभा बिटिया का विवाह रिटायरमेंट होने के पीछे दिन बाद करेंगे। वह कुछ दिन और साथ रह लेती तो नौकरी से अलग होने की आई रिक्तता धीरे-धीरे दूर हो जाती और तुम्हारा रिटायर होने का अहसास खत्म हो जाता। तुम्हें थोड़ा-सा सोचने का अवसर मिलता है तो फिर उदास हो जाते हो। मानो तुम्हारा सब कुछ छिन गया है। मुझसे यह सब नहीं देखा जाता। लेकिन तुमने कभी मेरा कहना माना ही ना मानते जी। बस, एक ही रट थी, प्रभा की माँ, रिटायर होने पर आदमी की हैसियत बिगड़ जाती है समाज में भी। जबकि रिटायर व्यक्ति न किसी से कुछ माँगता है और न किसी का खाता है। मैं बिटिया का [illegible] हैसियत में। रिटायर का ग्रहण

लगन से पहले करूंगा और को।' क्यों जी, मैं पूछती हू अब ही हमारी हैसियत म कौन कमी आई है। एक बेटा गजेटेड अफसर है। दूसरा अमेरिका म बडे ओहदे पर है।'

स्त्री एकाएक चुप हो गयी। उसके चेहरे पर उदासी की छाया और शिकायत के चिह्न स्पष्ट उभरे थे। लेकिन पुरुष के चेहरे पर गव की चमक थी। जो अभी अभी कुछ क्षणो के लिए बिजली झमक जाने से स्पष्ट दिखाई पड रही थी। वह बोला—'प्रभा की मा, सब कुछ अपनी आखो से देखने के बाद भी नही समझी। प्रभा के विवाह मे कितने मत्री-सतरी सेक्रेटरी और उद्योगपति- ठ आये थ। कारो का समदर दूर दूर तक लहरा रहा था। सिफ इसलिए कि मैं एक बड अखबार का सम्पादक था। मेरी कलम के जादू ने करिश्मा तो दिखाना ही था। अब एक महीन बाद ही यदि मैं उन लोगो का निमत्रण भेजू तो आधे भी नही आयेंगे और साल छ महीने बाद ना शायद दो चार ही आ पाते। ये लोग भी कम्पनी की तरह नाशुक्रे ह। रिटायर होते ही क्या कम्पनी न मुर्दे के शरीर स कपडे उतारने जैसा कम नही किया था ?'

स्त्री निरुत्तर रह गयी।

बिजली ने थोडी देर पहले एक झलक दिखाकर आने की पूव सूचना एस द दी थी जस कोई मेहमान बिना तिथि बताये आने का सदेश भिजवा दे। स्त्री के चुप्पी लगाते ही सारे क्षेत्र म सोने-चादी की जगमगाहट हो गयी। जो बच्चे अब तक गली म खेल रहे थे उन्होन ओ ओ ो ो 'का समवत स्वर निकालकर बिजली महारानी का स्वागत किया। रेडियो और टी० वी० सेटो के स्विच आन होने की खबर घर घर स आने लगी। व दोनो भी उठ खडे हुए। स्त्री रसोईघर की ओर बढ गयी। पुरुष न अपने कमरे म जाकर टलीविजन चला दिया। हिन्दी म समाचार आ रहे थ। कोई मत्री महोदय देश की समस्याओ पर प्रेस को गर जिम्मदार ठहराकर बिना पानी पिये कोस रहे थ। पुरुष के सम्पादक हृदय पर हथौडा सा लगा और वह भूल गया कि अब वह भूतपूव हो गया है। लेकिन निष्पक्ष, निर्भीक पत्रकारिता का दम्भ अब भी मन के किसी कोने म दबा पडा था। जी म तो आया कि कोई मोटी सी गाली फक द। लेकिन शालीनतावश वह एसा न कर पाया। केवल विद्रूप भाव स उसने होठ बिचका दिये।

खाना ले आऊ जी ?' स्त्री न रसोईघर स पूछा।

'ल आओ।' सक्षिप्त सा उत्तर द पुरुष फिर म खबरें सुनने लगा।

खबरें और खाना साथ-साथ चलते रहे। बीच बीच म स्त्री पुरुष म कोई छोटा-सा वार्तालाप भी हो जाता। लेकिन अधिकतर खामोशी ही अपना आधिपत्य जमाये रहती थी। स्त्री सामान्य थ और पुरुष किसी चिंतन म खोया जान पडता

था। खाना समाप्त होने पर स्त्री बर्तन लेकर चली गयी। पुरुष ने टी० वी० बन्द कर दिया। उस पर 'द लूसी शो' धारावाहिक फिल्म की कड़ी आ रही थी। वह बुक शेल्फ से कोई किताब निकाल लाया और लेटकर पढ़ने की चेष्टा करने लगा। वह पन्ने-पर-पन्ने लौटता रहा। मगर मस्तिष्क ने कुछ भी ग्रहण करने से इन्कार कर दिया। उसने पुस्तक तकिये के सहारे रख दी। थोड़ी देर के लिए आंखें मूंद लीं। खोलीं तो उसकी निगाह सामने दीवार पर जा टंगी।

तीन उड़ते हुए ग्रेस साठ अंश के कोण पर समान दूरी पर लगाये गये थे। वे उड़ते पक्षी प्रभा की सुरुचि के द्योतक थे। वह इन्हें पालिका बाजार से लायी थी। दीवार में कील गाड़कर इन्हें टांगते हुए उसने पूछा था— पापा, अच्छे लगते हैं न। ऐसा लगता है, मानो जमीन से उड़कर आसमान की ओर जा रहे हों।'

'बहुत अच्छे लगते हैं।' उसने बेटी को दाद देते हुए कहा था—'लेकिन हर उड़ने वाली चीज अंततः लौटती है जमीन पर ही।'

लड़की उसका दर्शन नहीं समझ पायी थी और शायद वह स्वयं भी उस समय अपने शब्दों की गहराई नहीं समझ पाया था। आखिर उसने ऐसा क्या कहा? ऐसा कहकर वह बेटी को क्या समझाना चाहता था। लेकिन आज वह अपने कथन की सार्थकता समझ रहा है। जब से उसने उड़ना शुरू किया था तो उड़ता ही रहा, आकाश की बुलंदियों तक। उसने कभी जमीन को झांककर देखने की कोशिश नहीं की थी। लेकिन वह आज जब जीवन के ठोस धरातल पर खड़ा है तो आकाश की ऊंचाई असीम लगती है।

उसकी निगाह फिसलती हुई शीशे में जड़े उस पारिवारिक ग्रुप फोटो पर जा टिकी जिसमें प्रभा उसकी गोद में बैठी है। बायीं ओर पत्नी बैठी है। पीछे दोनों लड़के खड़े हैं शशिकान्त और निशिकान्त।

शशिकान्त यूनिवर्सिटी टॉप करने के बाद विशेष अध्ययन हेतु अमरीका चला गया। वह भी प्रतिभापलायन का एक और नमूना बन गया। बस वहीं का होकर रह गया। उसने अपनी एक सहपाठिन मिस डायना से विवाह रचा लिया।

पुरुष पुत्र के इस अप्रत्याशित व्यवहार से आहत हुआ था। लेकिन कुछ कर पाना उसके वश की बात नहीं थी। उसका घायल राष्ट्र प्रेम छटपटाकर पुत्र प्रेम के नकली मरहम के नीचे टीसता रहा। उसे मन मारकर सन्तोष कर लेना पड़ा। चलो, वह जहां रहे, सुखी रहे।

निशिकान्त भी सामने से उड़ गया राजपत्रित अधिकारी बनकर। उसकी पोस्टिंग बम्बई में हुई थी। सुना है, किसी सिने एक्ट्रेस से उसका रोमांस चल रहा है लेकिन मां-बाप के सामने वह हमेशा झूठ बोलता रहा है। विवाह की बात चली तो उसने किसी [illegible] अफसर लड़की से ही शादी करने का निश्चय प्रकट किया। लेकिन जब उसने तार द्वारा सूचना दी कि उसने किसी ऐक्ट्रेस से विवाह कर लिया

मा का हसरत भरा दिल बैठ गया। बाप सिर्फ ठंडी सास लेकर रह गया।
सारी उम्र अपनी कलम से दूसरो के लिए आदर्श स्थापित किए थे। लेकिन
अपना पैर कटी डाल पर आया तो केवल तड़पकर रह गया। उसने प्रगति-
ता का लबादा ओढ़कर सदा अपने बच्चो को दोस्ती का दर्जा दिया था।
उन्मुक्त गगन मे उड़न की पूरी आजादी दी थी।
प्रभा भी वैसे ही वातावरण म पली-बढ़ी थी। बी० ए० तक पहुचत पहुचते
े भी पख लगने लगे थे। पुरुष सब समझ गया था कि वह भी किसी दिन फुर
ड़ जायेगी और बच्चो का विवाह देखने की उसकी अभिलाषा का यह अन्तिम
भी हाथ से जाता रहेगा।
उधर पद से सेवा-निवृत्त होते ही उसका अवमूल्यन हो जायगा। केवल कहानी-
ता लिखकर निठल्लेपन की मारक स्थिति से बचने का उपाय रह जायेगा।
स्त्री स विचार विमर्श कर प्रभा के लिए इंजिनीयर वर खोज लिया। धूम-
से विवाह किया। मन की सारी हसरतें स्त्री-पुरुष ने इस विवाह मे पूरी कर
र का अनुभव किया। प्रभा अपने पति के साथ बंगलौर चली गयी।

ह की रौनक समाप्त होन पर मेहमान विदा होने लगे। शशिकात और निशिकात
पन परिवारों के साथ लौटने की तयारी करने लगे। पुरुष ने भविष्य के
के मे झाककर एकाकी जीवन जीन की भयावहता स बचने के लिए शशि से
कि वह अगले महीने पद मुक्त हो जान पर उसके साथ रहना चाहता है। स्त्री
के पास बम्बई चली जाएगी। शशि तत्काल उत्तर न दे पाया और कोई बहाना
उठ गया। उसने अपनी पत्नी म विचार विमर्श किया तो वह सहमत नही हुई
उसे पिता के पास जाकर झूठ बोलना पड़ा कि उसके पास बहुत छोटा बगला
जिसमे उसके परिवार के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति के रहने की गुजाइश नहीं ह।
रहा से जाकर कोई बड़ा-सा मकान ले लेगा तो सूचना द देगा और हवाई
ज का टिकट भी भेज देगा।
स्त्री को यो अपनी चुलबुली एक्ट्रेस बहू के रग-ढग पसन्द नही थ, फिर भी
उनके साथ रहन की टिप्पस भिड़ाने की कोशिश की। मगर निशिकात भी
के लहजे मे बोला—'मा ! तुम वहा बोर हो जाओगी। मुझे कई-कई दिन
पर बाहर जाना पड़ता ह। विश्वमोहनी महीनो के लिए शूटिंग पर चली
ह। अकेली कैसे रहोगी? बम्बइ मे पड़ोसी पड़ोसी को नही जानता।'
बच्चो क चली जाने पर स्त्री पुरुष न सोचा कि क्यो न शशिकात की
ो एना को अपन पास रख लिया जाए। बड़ी प्यारी बच्ची ह और दादी के
घुल मिल भी गयी ह। जब यह प्रस्ताव डायना क सामन रखा गया तो वह
इनकार कर गयी। वह एना को अमेरीका मे रखकर ही पढ़ाना चाहती ह।

स्त्री अन्दर ही-अन्दर बहुत कुढ़ी थी। एक बार तो जी में आया भी कि कह दे, उसका पति भारत में रहकर इस योग्य नहीं बना क्योंकि वह आज अमरीका में है। लेकिन वह कह न सकी। जब अपना ही खून आँखें बदल रहा है तो परायों-जायों से क्या शिकवा करें।

सब चले गए। घर सूना हो गया। सूनापन उस दिन और भी बढ़ गया, जब पुरुष सेवा निवृत्त होकर अपने इस घोंसले में आ समाया था। उसने कितने जतन से घर बनाया था। दो लड़के थे। मकान के भी दो भाग थे। दोनों के लिए अलग-अलग, अपना क्या? एक कोठरी में पड़े रहेंगे बूढ़े-बुढ़िया। लेकिन कालचक्र अति बलवान है। सारा परिवार छितरा गया, डाल से टूटे पत्तों की तरह।

पुरुष के मुँह से एक गहरी सांस निकली। उसे पता ही नहीं चला कि स्त्री काम समाप्त कर कब बिस्तर पर आ लेटी। उसे अधर में आँखें गड़ाये देख स्त्री ने सोचा था, शायद वह किसी रचना-प्रक्रिया में तल्लीन होगा। इसलिए वह चुपचाप करवट ले दीवार की ओर मुँह किए लेटी थी। यद्यपि रात बहुत नहीं बीती थी, फिर भी घर के हर कोने में व्यापे सन्नाटे ने उसकी पलकें बोझिल कर दी थीं।

पुरुष की निगाह रपटती हुई सामने के रोशनदान पर चली गयी, जहां चिड़िया ने घोंसला रखा हुआ था। घोंसले में दो बच्चे होने के कारण सफ़ेदी कराते समय पुरुष ने घोंसला नहीं उतारने दिया था। चिड़िया जब चुग्गा लेकर आती थी तो कितना शोर मचाते थे वे अपनी लाल-लाल चोंच खोलकर। अब चिड़ा-चिड़िया तो गाहे-बगाहे घोंसले में आ जाते हैं, किन्तु बच्चे गए सो गए। कभी नहीं आये लौटकर।

पुरुष का मन पढ़ने में नहीं लग रहा था। उसने किताब बुक सेल्फ पर रखकर लैंप बुझा दिया। कमरे में काले-स्याह अँधेरे की चादर तन गयी।

दुखडा किससे कहू

प्यारी सुषी

जानती हो अब क्या बजा है ? यह भी जानती होगी कि किन परिस्थितियो म यह चिट्ठी लिख रही हू । नही न । सोचती हागी कि मैं पगला गयी हू । भला तू इतनी दूर बैठी यह सब कैसे जान सकती है। और म हू कि सवाल प सवाल ठोक जा रही हू । सचमुच पागलपन की निशानी है । यदि तूने मेरे बारे मे ऐसा साच भी लिया हो तो कितना अच्छा हो कि मैं वास्तव म पागल हो जाऊ और कही कुए-बावडी मे डूबकर मर जाऊ । रोज-राज मरन स ता एक दिन मरना अच्छा। सच रोज मर रही हू । तिल तिल करके मर रही हू । इसलिए न जिन्दो मे हू, न मुर्दो म । बस एक लोथ की शक्ल म इधर स उधर डोलती रहती हू । सच मान री, आज यही सोचकर मरन चली थी—झझट कटे ।

मेरे पैरो के पास मिट्टी के तल की कनस्तरी रखी है । माचिस भी है । साथ ही स्टोव देवता भी रखे है । मैं जल मरू तो कहानी स्टोव फटने की गढी जाए। इसलिए ही तो स्टोव को देवता कह रही हू । बेचारा अनेक ललनाओ के जलने पर या जलाये जाने पर सारे पाप के विष का शिव की भाति कठगत कर लेता है। हसी आ गयी न सुषी । सोचती होगी भला मरना ही था ता मर जाती । नाटक क्या रचा ? लेकिन रानी सखी, यह सारा ससार नाटक ही तो है और हम सब इसके पात्र हैं । सब अपना-अपना अभिनय करते हुए अपनी नियति भोग कर पर्दे के पीछे चले जाते हैं । पीछे रह जाते हैं कुछ ऐसे सवाद और अभिनय के कला-तत्त्व, जिनके आधार पर हमारे सुकर्मों और दुष्कर्मों की मीमासा की जाती है ।

सुषमा बहन, मेरा प्रलाप सुनते-सुनते खीझ गयी हो न । न-न, मेरी अच्छी सखी, ऐसा बिलकुल मत सोचना । तेरे सिवा मेरा दुखडा सुनने वाला है भी कौन ? मा ? वह तो खुद ही दुखो की पोटली बाधे है । उसके देखते-देखते सारा पीहर उजड गया । मेरा गम कैसे बर्दाश्त करेगी । भाई अपाहिज है । रहे पिताजी सो दिन के मरीज । बस न द के एक बचती है तू । सो लिख रही हू ।

हा, तो कहानी जानदार है, पर शानदार बिलकुल नही। अब जब तुम अपने 'उनके' सिर के नीचे अपनी मणाल भुजाओ का तकिया लगाए बाल भरे वक्ष पर सिर टिकाए रेशमी सपने देख रही होगी, मैं बिलकुल तन्हाई के कैदी की तरह अपन कमर म बैठी मौत की ओर बढ रही हू। तेल और दियासलाई का मेल होते ही भक से सारा खेल कुछ मिनटो सेकेंडो मे समाप्त हो जाएगा। तू सोचती होगी, मेरे जैसी साहसी लडकी इतनी कायर कैसे हो गयी। जो हर समय साडी का पल्ला कमर मे खोसे, हर आततायी से उलझने को तैयार बैठी रहती थी और आज मरने के लिए कमर कसे है।

सुषमा दीदी, परिस्थितिया बडी बेरहम होती हैं, निमम भी। बख्शना ही नही जानती। मेरी भी कुछ ऐसी ही मारक स्थिति है। तुझे याद होगा, जब हम कालेज म पढ़ते थे तो गुलमोहर के पेड के नीचे बैठकर कैसे कैसे सपने सजोया करते थे। तू कहा करती थी कि डॉक्टरेट करने के बाद लेक्चरर बनूगी और मैं कहती थी कि मै बॉटनी मे रिसर्च करूगी। बस पढने की एक लगन थी। उत्कट अभिलाषा थी। सिवा पढाई के कभी कुछ सोचा ही नही। पढाई ! पढाई !! बस।

विवाह जैसी अहम समस्या पर कभी विचार किया ही नही। जबकि हर लडकी के जीवन मे विवाह एक विशेष घटना होती है। जहा से जीवन की धारा एक नया मोड लेती है। जिसके गभ मे साथकता विफलता दोनो ही छिपी होती है। एक दिन गुलमोहर की डाल पर बैठे कपोत युगल को प्रेमरत देख तूने पूछा था। रजू, अब हम कोई बच्ची नही रह गयी हैं। एक दिन शादी तो करनी ही पडेगी। क्यो न हम अपने मन पसन्द लडकों को ब्वॉय फ्रेंड बना लें। मा-बाप के सिर का बोझ तो हल्का होगा ही, हम अपने मनोनुकूल जीवन साथी भी मिल जाएगे। और मै गुल दाऊदी के पेडे की तरह चटक गयी थी 'सुषी, तू पागल हो गयी है क्या ? पहले हम अपना लक्ष्य तो पा लें जिसके लिए हमने सकल्प किया हुआ है। शादी ब्याह बाद की बात हैं। अर्जुन की तरह हम अपने भेद्य बिन्दु पर ही ध्यान केन्द्रित रखना चाहिए।'

उस दिन के बाद फिर कभी ऐसी चर्चा नही चली। यद्यपि तू भी जानती थी कि तुझ पर कौन लडका जान छिडकता है और मुझे भी मालूम था कि कौन मुझे कनखियो से देखता है, पर हमने उन्हे कभी अपने सपनो की जद मे नही आने दिया। रोमास हमारे लिए वर्जित क्षेत्र था। इसलिए कभी जाने अनजाने भी हमने उन्हे लिफ्ट नही दी। परिणाम सामने था, हम दोनो एम० एस-सी० म प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हुई। किन्तु विडम्बना तो देखिए, तू अपने उद्देश्य म सफल हुई। डॉक्टरेट की और लेक्चरर हो गयी। मगर मेरी नियति की गगा उल्टी बह निकली। मा-बाप को अपनी रिश्तदारी मे अच्छा लडका मिल गया। बिलकुल यतीन जैसे थे निखिल। स्वस्थ स्मार्ट। अच्छी नौकरी पर लगे हुए। मेरा ध्येय जानने और मानने करने

पर भी विवाह रचा दिया गया। रिसर्च स्कॉलर बनने का सपना धरा-का धरा रह गया। फिर भी मैंने निखिल को खुले मन स्वीकार लिया। मैं न सही पति तो रिसर्चर थे। वह भौतिक अनुसंधानशाला मे वरिष्ठ वैज्ञानिक थे।

सुधी निखिल वैज्ञानिक होते हुए भी गुरु गम्भीर नही थे। जब वह अपने परिवार मे होते तो कोई कह ही नही सकता कि वह कोई वैज्ञानिक हैं। ऐसे लतीफे चुटकुले सुनाते कि सुनने वालो के पेट मे बल पड जाते। बहुत ही हसमुख थे वह। जहा वह सफल वैज्ञानिक थे वहा सद्गृहस्थ भी थे। उन्होंने सुखों के पालने मे झुला दिया मुझे। उनके साथ जिया एक एक क्षण मेरे रोम रोम में समाया है। प्यार की ये चादनी रात कब गुजर गयी, पता न चला और जब पता चला तो चारो ओर अधेरा ही अधेरा छा गया। मैं तत्ते तवे पर पडी तडप रही थी। बूद की तरह छनछना रही थी।

एक दिन शाम को निखिल लौटे तो फ्यूज बल्ब की तरह थे। बुझे-बुझे गुमसुम। वह बिना कपडे उतारे ही अपने बिस्तर पर जा गिरे। माथा ठनका। कहीं कोई अनहोनी घटित हो गयी थी। मैं उनके पास गयी। उनके जूते जुराब उतारे। वह निश्चेष्ट पडे रहे। मैं धीरे धीरे उनके पास बैठ गयी। बाल सहलाते हुए प्यार से पूछा—निखिल, क्या बात है ?

वह नही बोले। बस थोडी-सी पलकें उठाकर रीती रीती आखें मेरे चेहरे पर गडा दीं। उनका इस प्रकार देखना मुझे कतई अच्छा नहीं लगा। मैंने उलझे बालो को हाथो से खिसका कर निखिल के गालो को सहलाया और द्रवित होकर पूछा—बोलोगे नही ?'

वह तब भी नही बोले। मुझे उनकी चुप्पी से डर लगने लगा। मैं अपने को रोक नही पायी और उनसे बेल की तरह लिपट गयी। बार-बार उनकी छाती पर सिर धुनने लगी—'क्या हो गया, निखिल ? मेरे अच्छे निखिल, कुछ बोलो तो।

मेरे इस प्रकार सिर पटकने से धीरे धीरे उनके होठो मे कपन हुई। जो मुश्किल से मेरे कानो तक पहुच पायी—'रजू, मुझे मर जाना चाहिए।

नहीं !' मेरे मुह से चीख निकलते निकलते रह गयी। मैंने उसके होठो पर हाथ रख मुह बन्द कर दिया—निखिल, यह क्या कह रहे हो ? क्या हुआ, कुछ बताते क्यों नही ?

लेकिन वह आगे कुछ नही बोले। मैं सिर धुनती रही, पटकती रही, पर वह पत्थर हुए रहे। हा, बहुत प्रयत्न करने के बाद एक बार फिर वह बुदबुदाये—'साला यह देश है, जहा गधे घोडे की परख नही। काश ! मैं बहुत पहले यहा से कही चला जाता।

और इसके बाद तो उनके मुह को ताला ही लग गया। गुमसुम रहने लगे।

हंसी तो क्या, उनके मुंह से दो बोल सुनने को तरसने लगे हम सब। हां, कभी-कभी वह अकेले बैठे हंसने लगते तो कभी अनाप शनाप बकने लगते। उनके साथ भी वही हुआ था जो उनसे पहले अनेक वैज्ञानिकों के साथ हो चुका है। बस अन्तर था तो इतना कि उन्होंने आत्महत्याएं कर ली थी और ये विक्षिप्त होकर रह गए थे। इनकी वरीयता को नजरअंदाज कर किसी नेता का बेटा बाहर से लाकर थोप दिया गया था।

निखिल दफ्तर से लौटकर अपने बेटे कुणाल के साथ घंटों खेलते थे। लेकिन अब वह उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखते। मुझे खा जाने वाली निगाहों से घूरते हैं। मां का बोला हुआ तनिक भी बर्दाश्त नहीं करते। ससुरजी तो बस निखिल का टूटना बिखरना टुकर-टुकर देखते रहते हैं। सच री मेरी बहनिया, उनका त्रस्त-दयनीय चेहरा मुझसे देखा नहीं जाता। जब वह कातर होकर आसमान की ओर सूनी-सूनी आंखों से देखते हैं तो मेरा धैर्य जाता रहता है। आंखों से सावन बरसने लगता है।

निखिल का मस्तिष्क दिनों दिन विकृत होता जा रहा है। जब दौरा शान्त होता है तो वह मेरा सिर अपने वक्ष पर रखकर फफक पड़ते हैं, कुणाल का मुंह चूम चूमकर लाल कर देते हैं। मांजी से क्षमा मांगने लगते हैं। पिता के सामने शर्म से सिर झुकाए खड़े रहते हैं। मानो उन्हें पश्चात्ताप हो रहा हो। जब वह सोए होते हैं तो मैं उनके सौम्य चेहरे को एकटक निहारती रहती हूं। बच्चों जैसी मासूमियत छायी रहती है उनके चेहरे पर। कोई कह ही नहीं सकता कि यह व्यक्ति मेंटली डिस्टर्ब होगा। मुझे लगने लगता है, जो बीत गया, वह सब एक दुःस्वप्न मात्र था। एक-दो दिन हस्ब मामूल चलता है। लेकिन फिर उनमें एकाएक परिवर्तन आने लगता है। भृकुटी तनी-तनी रहती है। चेहरा रूखा हो जाता है। अकेले में बैठे कभी हंसते हैं तो कभी बड़बड़ाते हैं। बबकारते हैं। हिंस्र भी हो उठते हैं।

सच सुपी, पहले यह सब जैसे तैसे बर्दाश्त कर लिया जाता था। लेकिन अब तो सहनशक्ति जवाब दे गयी है। महीनों महीनों उनकी ऐसी ही हालत रहती है। सोते नहीं पिंजरे में बन्द शेर की तरह चक्कर काटते रहते हैं। खाना-पीना छूट जाता है। सूखकर पंजर मात्र रह गये हैं। कोटरों में धंसी आंखें बटर-बटर करने लगी हैं। बड़े-बड़े मनोचिकित्सकों को दिखाया। मेंटल अस्पताल का इलाज चल ही रहा है लेकिन कोई सुधार दिखाई नहीं पड़ता।

जरा सोचो सुपी, एक स्वस्थ आदमी को किसी पागल के साथ वर्षों रहना पड़े तो उसकी दशा क्या होगी? इससे बड़ी और यातना क्या होगी? अब तो लगने लगा है कि मैं भी पागल होने वाली हूं। मुझे भी अनिद्रा रोग होने लगा है।

घटो घटो सोचती रहती हू। क्या इन्ही सुनहले दिनो की कल्पना की थी। जब कालेज मे बिताये दिनो की याद आती है तो मेरे मन का हस शर विद्ध होकर तडपने लगता है। आखें पिघलने लगती हैं और शरीर गलने लगता है। सोचती हू, मर जाऊ। तभी तो तेल माचिस लिये बैठी हू। मौत और जिन्दगी म कुछ पलों और इचो का फासला है। तेल और सलाई की लौ का मिलन हुआ नही कि कुछ ही क्षणो मे सब कुछ स्वाह, सारे दु खों का अन्त।

सुषमा, मौत की कल्पना कर लेना जितना आसान है उतना मरना नही। मृत्यु का वरण करने के लिए स्वय के और जग के प्रति निमम होना पडता है। लेकिन मैं निमम कहा हो पायी? मेरा बेटा कुणाल जो निखिल की बिलकुल अनुकृति है थोडी दूर पर सोया पडा है। उसकी पुकार मेरे कानो म गूज रही है, 'मम्मी, मुझे छोडकर मत जाओ मत जाओ अपने जिगर के टुकडे को छोडकर। मम्मी मुझे यतीम मत बनाओ।'

सुषमा, मेरा सकल्प टूट रहा है। मेरे हाथो म माचिस की डिबिया काप रही है तेल की कनस्तरी म मनो वजन लग रहा है। नही नही मैं मरूगी नही। मुझे जिंदा रहना है। कुणाल क लिए सास-ससुर के लिए और छोटी ननद के लिए। जो सब निखिल का गम झेल रहे हैं। भला मेरी मृत्यु का सदमा कैसे सहन कर पायेंगे। मुझे अपने लिए न सही। उनके लिए तो जिंदा रहना ही पडेगा।

सुषी मैं अतिशयोक्तिपूवक नही कह रही हू। यदि तुम अपनी सास ननद के साथ रहती होती तो तुम्हें मेरी सास-ननद से अवश्य ईर्ष्या होती। पर तू तो रहती है अपने प्रोफेसर मिया के साथ, सैकडों मील दूर लखनऊ म। सास ससुर कभी कभार ही आते होग मिलने के लिए—मेहमान की तरह। फिर तुझे सास के सा रहने की अनुभूति कैसे हो सकती है। सच री सास क सान्निध्य मे रहने का आनद ही कुछ और है। अब तक हमने अखबारो मे सास का कर्कशा और बहुओ को जलाने वाली के रूप म ही जाना है। अन्नपूर्णा के रूप मे नही, मेरी सास तो बिलकुल मा तुल्य है। अपार ममतामयी। मुझे काटा चुभता है तो टीस उस होती है। उसके आचल तले आकर मुझे कभी लगा ही नही कि मैं अपनी प्रसविनी मा से कही विलग हू। ससुरजी तो साक्षात देवता हैं। निखिल के दुख से दुखी रहते हुए भी मुझे ढाढस बधाते रहते हैं। दुखो से लडने के लिए उत्साहित करते रहते हैं—'रजु बेटी। मेरे दुष्कर्मों का फल तुझे भोगना पड रहा है। मैं अभागा हू। मेरे बुढापे का सहारा अब तू ही तो है।' ननद छोटी जरूर है। पर नाम अनुरूप खरी कचन है। थोडी सी उम्र मे कितनी समझदार हो गयी है कचन। मुझे कभी अकेली नही छोडती। बडी-बूढियो की तरह बातें करती है। निखिल आपा खोने के बाद भी उसके सामने महावत के सामने हाथी की तरह शात हो जाते हैं। प्यारी बहन ऐसी

ससुराल केवल किस्मतवालों को ही मिलती है।

बस इसलिए ही जिंदा रहने की ललक है। इन सबको किसके सहारे छोड़ूं। एक विक्षिप्त व्यक्ति के भरोसे। जिसे स्वयं का भी भान नहीं। कैसी हो जायेगी इन सबकी दुनिया। घटाटोप अंधकार की दुनिया। जिसमें आशा की किरण कहीं न होगी। सिर्फ अंधकार भरे भविष्य का ख्याल लील रहा होगा इन सबको। बस यही सब सोचकर जीने की चाह जाग जाती है। ये ही लोग मेरा संबल हैं। प्रेरणा स्रोत हैं।

आज जब उन्होंने आवेग में मेरा गला दबाने की कोशिश की तो मन हुआ कि आज तो किसी न किसी तरह बच गयी। लेकिन सिर पर लटकती तलवार के नीचे कितने दिन जिंदा रहा जा सकेगा। तिल-तिल मरने से तो एकदम मर जाना कहीं बेहतर होगा। बस तेल की कनस्तरी दियासलाई ले बैठी हूं। लेकिन मन नहीं माना इसलिए नहीं कि मैं कायर हूं। मृत्यु से डरती हूं। सुधी, जब हम पढ़ते थे तो अखबारों में आत्महत्या करने वालों की खबर पढ़कर उन्हें कितना बुरा-भला कहा करते थे। आत्महत्या करना कायरों का काम है। फिर मैं ऐसी कायरता क्यों करूं? मुझे जिंदा रहकर संघर्ष करना है। भाग्य नाम की यदि कोई चीज है तो उसे बदलना है। जब सावित्री सत्यवान को यम से वापस लाकर विधाता की खींची लकीरों को बदल सकती है तो फिर मैं क्यों नहीं? मैं भी तो उसी देश की नारी हूं। मेरे भीतर भी तो वही ओज है।

पत्र बहुत लंबा हो गया। लेकिन तेरे सामने अपने मन की भड़ास निकालकर बहुत सुकून मिल रहा है। लगता ही नहीं कि तू कोसों दूर है। ऐसा लग रहा है। मानो तू बगल में बैठी मेरी व्यथा कथा सुन रही है। वर्ना यहां अपना दुखड़ा किससे कहूं। वे सब भी तो मेरी तरह दुखी हैं, त्रस्त हैं। उनसे अपनी बात कहकर उन्हें और दुखी करना नहीं चाहती। बस, 'वह' अपने कमरे में चीखने चिल्लाने लगे हैं। चलूं, शायद मेरा प्यार का स्पर्श पाकर शांत हो जाएं।

तुम्हारी प्रिय सखी

रंजना

केतकी

केतकी का घर मेरे रास्ते म पडता था। मैं पुस्तक दबाये उधर से गुजरता तो वह दरवाजे पर बैठी होती। मुझे देखकर वह होले से मुस्कराती। जी चाहता कि मैं उसे देखता रहू, लेकिन न जान क्या, मैं शर्मा जाता। मन में अजीब गुदगुदी-सी होती और मैं मीठा-सा उन्माद लिय आगे बढ़ जाता। पढ़ाई म मन न जम पाता। उसकी हसी की खनक कानों म गूजती रहती। उम्र ही ऐसी थी। जब पुरुष नारी शरीर के भौगोलिक अध्ययन के लिए लालायित रहता है

और एक दिन मैं किसी पौराणिक आख्यान के कामात नायक की भाति उसकी दहलीज पर प्रणय को याचना करने जा खडा हुआ। पूव परिचित मुस्कान से उसने मेरा स्वागत किया। मैं आपा खो बैठा। उसे आगोश म ले मैंने अपने होठ उसके होठो की तरफ बढा दिय। वह एकबारगी तडप सी गयी। उसका चेहरा विवत हो गया। बोली — नही भतीजे, नही। यह जूठन तुम्हारे लिये नही है।'

मैं हतप्रभ रह गया। वह बुदबुदाती रही—'मैं बेटे की सेज पर चढन का पातक नही झेल पाऊगी। बाप-बेटे की समान रूप से भोग्या नहीं बनूगी मैं।'

मैं क्षितिज की ऊचाई स धरती पर आ गिरा। सैकडो सवाल मेरी आखो के सामने तैरने लगे। एक जनभाग्या नारी का इतना ऊचा प्रतिमान ! मेरी आंखो से उसका वेश्यावाला रूप गायब होकर एक मा मौसी और चाची का रूप बिंबित होने लगा।

मुझे बुत बना देख, उसन बच्चे की तरह दुलारते हुए मेरा माथा चूम लिया। 'नाराज हो गय भतीजे ! जिस शरीर पर तुम मोहित हुए बेटे, इसका रोम रोम पाप म लिथडा है। जिस नरक-कुड म मैं डूबी हू, कौन मा चाहेगी कि उसका बेटा उसमे गिरकर रौरव यातना भोगे।'

मैं निरुत्तर था। मुझे अपन व्यवहार पर बेहद क्षोभ था। मैं लौट जाना चाहता था, पर उसने लौटने नही दिया। वह मुझे अन्दर ले गयी। उसके आदेश पर उसका भाई नगुआ मेरे अतिथि सत्कार म जुट गया। मैं सोच रहा था, यह कसा भाई है। जो बहन के खरीदारों का स्वागत-सत्कार कर मिरासी धम निभाता है।

मैं इसकी जगह होता तो अपनी बहन की तरफ बुरी नजर से देखने वालों की आँखें निकाल लेता।

उसके यहा मुजरे मे आने वाले सभी सम्भ्रात एव कुलीन व्यक्ति थे। जमीदार, मुन्न पढाने वाले प्रोफेसर, रामनामी गमछा टागने वाले मदिर के पुजारी, सरकारी मशीन के एक पुर्जे मेरे पूज्य चाचाजी और भी कितने ही नवरदार मुखिया और मुशी। सरकारी आदमी होने के कारण सारे गाव मे मेरे चाचाजी का रुतबा बुलद था और उनके कारण मैं सारे गाव का भतीजा था। केतकी ने भी उनसे रिश्ता जोडकर मुझे भतीजा स्वीकार लिया था।

उन लोगों के विदा होने पर केतकी मेरे पास आकर बोली—'भतीजे, अब तो तुम समझ गये होगे। भला मैं तुम्हें गलत रास्ते पर कैसे ले जा सकती हू। मैं तुम्हे उम्र मे समान होते हुए भी अपना बेटा ही मानती हू। मेरी आरजू है कि तुम्हारा विवाह हो। चांद-सी बहू आये। उसे अपने हाथो सुहाग का जोडा पहनाऊगी। उस रात मैं इतना नाचू गाऊगी कि जीवन मे आगे नाचने-गाने की तमन्ना ही न रहे।' केतकी की मोटी मोटी आखों मे पानी की पर्त फैल रही थी। उसका गला भर आया था। वह याचना भरे स्वर में बोली—'बुलाओगे न मुझे अपने विवाह के दिन ?'

वह दिन आया। लेकिन केतकी नही आयी। मैं उसे लिवाने नहीं जा सका। केवल खत लिख भेजा। उसने भी अपने भाई ननुआ की नववधू के लिए सौगात दे कर भेज दिया। भेंट के साथ एक बद खत भी भेजा था। जिसमे लिखा था—

'प्रिय भतीजे, तुम्हारा विवाह है, मैं कितनी खुश हू। शायद तुम नही जान पाओगे। आज कोई मेरा कलेजा भी मागे तो निकालकर दे दूगी। बहू के लिए छोटी-सी भेंट भेज रही हू। उसे जरूर पहनाना। पहनाना तो मैं अपने हाथो से चाहती थी। किन्तु तुमने मुझे इस योग्य नही समझा। सच, कितनी टीस हुई है मेरे मन मे, यह तो कोई मा ही जान सकती है। तुम लिवाने नहीं आये। भला कोई मा को भी महज खत से बुलाता है। खैर तुम खुश रहो। यही मेरी आशीष है।

मैं इस नारकीय जीवन से तग आ गयी हू। दिदिया को तुम जानते ही हो। वही दिदिया कहार, जो कलकत्ता चला गया है। वह मुझे बहुत चाहता है। कलकत्ता में उसकी डरी का काम जम गया है। मैं उसके साथ वही जा रही हू। ननुआ जब तक लौटकर आयेगा, हम कलकत्ता पहुच चुके होगे।

दुल्हन को मेरा प्यार देना।

अभागिन केतकी।'

... बहुत दूर जा चुकी है। लेकिन जब मैं अपनी दुल्हन के गले मे उसका

भेजा मंगलसूत्र और हाथों में कंगन देखता हूं तो लगता है केतकी हमारे इर्द गिर्द ही है और अब तो विवाह के शुभ अवसर पर रोपे गये केतकी के पौधे में फूल भी खिलने लगे हैं। उसकी मुस्कराती कलियों में मुझे केतकी का चेहरा दिखाई पड़ता है, जो कहीं से भी वेश्या का चेहरा नहीं लगता। हमेशा प्रतीत होता है कि कोहनी तक गोबर सने हाथों से केतकी कंडे थोप रही है।

मानवी

'रंडी !'

'चटाक !

एक भरपूर चांटा मेरे गाल पर पड़ा । मैं हक्का बक्का गाल सहलाता हुआ मां का मुंह ताकता रह गया ।

मैंने अपनी छोटी बहन चारू को गाली दी थी । वह बहुत नटखट है । मैं पढ़ने बैठता हूं तो वह मेरी किताब-कापी छेड़ती रहती है । कलम उठाकर कापी के पन्नों पर कीरम-काट खींच डालती है । क्षुब्ध होकर मैं कभी-कभी उसे मार बैठता हूं । पीछा वह तब भी नहीं छोड़ती । खीझकर पन्ने नोच लेती है और भी न हुआ तो जीभ चिढ़ाती है और मेरी ओर 'थू' कर भाग जाती है ।

आज भी उसने ऐसा ही किया । मेरा रंग भरने का ब्रश लेकर उसने ड्राइंग-शीट खराब कर दी थी । मैंने गुस्सिया कर उसे रंडी कह दिया था । एवज में थप्पड़ जड़ने के बाद मां बोली—'फिर देगा गाली ?'

मैंने अच्छे बच्चे की भांति ना में गर्दन हिला दी । लेकिन मेरी समझ में एक बात नहीं आ रही थी कि मैंने ऐसी कौन-सी गाली दे दी, जो मां ने मुझे मारा । रहा न गया । पूछ ही बैठा— मां, मैंने गाली कहां दी है ? मैंने तो उसे रंडी कहा है ।

मां को मेरे भोलेपन पर प्यार आ गया । उसने दोनों हाथों में मेरा मुंह भर कर माथा चूमा—'रंडी गालो गाली होती है ।'

'तारो की मां भी उसे रंडी कहती है ।' मेरे द्वारा गाली के स्रोत का उद्गम सुन मां गंभीर हो गयी । बोली—'वे, वह छोटे लोग है । गंदी गंदी गालियां देते हैं । अच्छे बच्चे गाली नहीं सीखते ।'

तारो हमारे हलवाहे किसना की बेटी थी । उसकी मां दुल्लो हमारे यहां बेटी बन में आती थी । वह बड़े पापनी थी । तारो उसे परेशान करती तो वह झुंझलाकर गाली निकालती— मानेगी नहीं, रंडी का मुंह तोड़ दूंगी' और कभी-कभी वह सचमुच मुंह तोड़ भी देती । दो-चार थप्पड़ तारो के गाल पर जड़ गाली देता

थी। मैं बचपन से ही जिज्ञासु वृत्ति का था। मा से पूछ बैठा—'मा, रंडी क्या होती है?'

'बुरी औरत को रंडी कहते हैं, बेटे!' मा ने सहज भाव से उत्तर दिया। वह क्या जानती थी कि उसका तार्किक बेटा उसे उलझा लेगा।

मैं बोला—'मा, बुरी औरत कैसी होती है?'

'जो झगडालू हो।' मा ने बात टालने की गरज से कहा।

'तब तो मा ताईजी भी रंडी हैं। वह तुम्हारे से झगडती हैं।' मैंने अगला सवाल फेंक दिया। मा अवाक् मेरा मुह ताकती रह गयी।

वह उलझी-सी बोली—'बडा शैतान है रे। बडो के लिए ऐसा नहीं कहते। चल, चुपचाप स्कूल का काम कर।'

अपनी बात को यों बीच में ही टलते हुए देख मैं मन मारकर अपने काम में लग गया।

मैं रंडी के कोठे पर खडा हू। जिस बुरी औरत की कल्पना करते बचपन बीता था। वह आज मेरे सम्मुख थी, रंडी—हीरा बाई।

मैं कोठे पर आया नहीं, लाया गया हू। छल से। ठाकुर लाया है मुझे। वह यहा अक्सर आता जाता है। मैं नही जानता था। यदि जानता तो शायद मर कर भी न आता।

मैं दिल्ली में नया नया आया था। नयी नौकरी थी। दिल्ली की सडकें मेरे लिए मकडी का जाला थी। मैं बाहर निकलने मे घबराता था। एक ही रास्ता याद था मुझे—घर से दफ्तर और दफ्तर से घर। ठाकुर मेरा रूम मेंट था। साठ रुपये की नौकरी में अकेले किराया भरना मेरे बूते की बात न थी। मेरे जिस सबधी ने नौकरी दिलवायी थी, उसी ने ठाकुर को मेरा रूम मेंट बनाया था। ठाकुर उसके गाव का था।

ठाकुर सुदर-स्वस्थ युवक था। पैसा भी मुझसे ज्यादा पाता था। वह ठाठ से रहता था। उसके बाल-बच्चे भी मेरे बच्चो की तरह गाव में रहते थे। हम दानो आजाद थे। मुझे बाद मे पता चला कि ठाकुर तमाशबीनी का शौकीन है। मैं उसके बिल्कुल विपरीत था। बचपन से ही 'मातृवत परदारेषु' का सदुपदेश मेरे कानो में उडेला गया था। मेरी शिक्षा-दीक्षा आर्यसमाजी स्कूल में हुई थी। नौकरी पर आते समय पिताजी ने मुझे लोक-कथाओ के नायकों को प्रदेश जाते समय दी जाने जाने वाली शिक्षा की शैली में कहा था—बेटा, परदेश में जुबान और लगोट का पक्का, हाथ का सच्चा कभी मार नही खाता।' यही कारण था कि स्त्री मेरे आकर्षण का कभी केन्द्र नही रही।

ठाकुर की नजरो में मैं गवई गाव का था। बुद्धू। और बुद्धू को बुद्धू बनाना वह

अपना अधिकार मानता था। उसने मुझे अपने रग मे रगना शुरू किया। शुरुआत की सिनेमा से। जसे शराबी पहले अपने पल्ले मे शराब पिलाकर दूसरो को शराबी बनाता है वैसे ही ठाकुर ने पहले अ पनी जेब से मुझे सिनेमा दिखाया। बाद म अधिकतर पैस मुझे ही देने पडते।

आज भी वह मुझे सिनेमा दिखाने का झासा देकर लाया था। ले आया कोठे पर। सीढिया चढते हुए मेरा दिल धड क रहा था। मैंने पूछा भी—'यहा कौन सिनमा है ?'

'जिन्दा सिनेमा' वह रहस्यमय मुस्कान बिखरा कर बोला।

अब हम जीने के सामने ऊपर की मजिल पर खडे थे। सामने रूप-जीवाओ का बाजार सजा था। मेरे मन मे भयमिश्रित घृणा भर गयी। मैं वापिस लौटने लगता हू। ठाकुर मेरा रास्ता रोककर खडा हो जाता है। कहता है—'साले, जिन्दगी के मजे ले। कहा भागा जाता है।'

'नही। तुम मुझे गलत समझे हो और गलत जगह ले आये हो।' मैं उससे बचकर सीढिया उतर जाना चाहता हू।

'अब, रुक तो सही। तू यही खडा रह। मैं अभी दस मिनट मे आता हू फिर सामने खडी लडकी को उसने पुकारा—'हीरा, जरा सभाल तो सही। साला नया-नया आया है। लडकियों की तरह शर्माता है।'

सामने चादनी-सी खिली एक लडकी खडी थी। लडकी आगे बढी। बीच मे ठाकुर ने उसके कान से मुह लगाकर कुछ कहा। लडकी मुस्करा गयी। ठाकुर वही खडा हो गया और लडकी मेरी ओर बढ आयी। उसने होठो पर मधुर मुस्कान लाते हुए मेरा हाथ पकडने की कोशिश की—'आइए न, यहा क्यो खडे हैं ?'

'चटाक !' मैंने अनायास उसके गाल पर एक चाटा रसीद कर दिया। उसकी हसी गायब हो गयी। मैं सकते मे रह गया। मैंने यह क्या किया ? मैं पूरी तरह सोच भी न पाया था कि दो मिरासियो ने मुझे आ थामा। वह भद्दी गाली देते हुए मुझे ठेलने लगे— बहन चा ऐसा पाक-साफ था तो यहा अम्मा का दूध पीने आया था क्या ?

मैं आपाद सिहर उठा। लगा कि अब पसलियो का सुरमा बने बिना नही रहेगा। वह मुझे आगे ठेलने लगे और मैं पीछे की ओर जोर लगाने लगा। मेरी दुर्दशा देख वह लडकी कडकी— छोड दो इसे, हरामियो !'

मिरासियो ने मुझे छोड दिया। लडकी बोली—'आप इस गदी जगह क्यो आये, भाई साहब ?

मैं अपराधी-सा चुप खडा था। ठाकुर भी हमारे पास आ गया। उसे अपने किए पर पश्चात्ताप न था। लडकी उसकी ढीठता पर खीझकर बोली—'तुम्ह

किसी शरीफ आदमी को यहां नही लाना चाहिए था।'

ठाकुर न बेशर्मी से दांत निकाल दिये। वह बोली—'जगन, इनके लिए यहीं कुर्सी डाल दो और नीचे से एक कोकाकोला ले आओ।'

जगन को आदेश दे वह ठाकुर के साथ चली गयी। मैं हक्का-बक्का उसकी पीठ देखता रह गया। कमरे म समा जाने तक। लडकी मेरी समझ से परे थी। क्या नाम दू, बुरी औरत या

डर

रात का सन्नाटा घुघा रहा था। बर्फानी तेज हवा मेरे कपडे उतारन का उतावली हा रही थी। मैंने कोट के कालर खड कर बटन अच्छी तरह् बद कर लिये। गुलबद सिर पर लपेट लिया और अपने को अधकार के महासागर में सर्पीली सडक पर धकेल दिया—पटरी पर इजन द्वारा शटिंग किए गए डिब्बे की तरह। साढे दस बजे थे और गाव स्टशन स छह् किलोमीटर दूर था।

लपककर चला। अधेरे ने हाथ बढाकर मुझे अपन आगाश म ले लिया। पीछे छूटे खभों पर टिमटिमाते बल्बो न सितारो का रूप धारण कर लिया था। मैं उछाह और विषाद का मिश्रण लिये गाव की ओर दौडा जा रहा था। तार मिला था। पिताजी के साय का सिर से उठन का मुझे बेहद गम था।

रात के सूनपन म केवल मेर बूटा की ठक ठक की आवाज मेरे काना तक पहुच रही थी। कभी-कभी भ्रम हो जाता कि कोई मेरा पीछा कर रहा है। मैं एक क्षण रुकता। आगे-पीछे दखता। कही कुछ न हाता। मुझे अपन पर स्वय हसी आ जाती। मेरे मन म उपजा डर मुझे छल रहा था।

मै इस समय काली क धौल पुल पर था। क्या मजे की बात है। काली नदी पर धौला पुल। चला, नदी का काली नाम तो सनातन ह्। पर पुल को धौला नाम दन वाले के दिमाग का दाद देनी ही पडेगी। क्या कटास्ट कलर मारा है। शायद नामकरण करन वाले के दिमाग म रगो की बात न आई हो। लेकिन मेरे दिमाग में श्यामपट पर मास्टरजी की चाकमिट्टी मे निकले सफेद अक्षर गिजबिजाने लगत हैं। विचारो की उडान और आगे बढती ह्। काल बादला के नीचे तैरत सफेद बगुले कितन शोभायमान लगत हैं और फिर तडित की रुपहली तलवार बादला का उदर चीरती ह्ता कुछ दर के लिए उनकी सफेदी आखा को चकाचौध कर जाती है। काले धौले के चक्कर म मैं थोडी देर के लिए डर से बेखबर हो जाता हू।

शायद आप सोच रह होंगे कि मैं धौले पुल के पीछे क्यो पडा हू? लेकिन इस पुल

का संबंध कहानी से है। इसलिए मेरे सोचने का बिन्दु बार-बार यह पुल बन जाता है। इसी पुल ने मेरे मन में डर को जन्म दिया है। जब यह नहीं था तो मैं कभी नही डरा। मैं डर से त्राण पाने के लिए मुह को अजीब-सी शक्ल दे हल्की हल्की सीटी बजाकर कोई फिल्मी धुन निकालने का प्रयत्न करने लगता हू तो कभी कोई लोकगीत गुनगुनाकर डर को भगाने की कोशिश करने लगता हू। डर बडा ढीठ है। वह फिर भी नही भागता। मैं पुल की सीमेंट की रेलिंग पर पैर लटकाकर बैठ जाता हू। सिगरेट जलाता हू। सलाई जलते ही कुछ क्षणों के लिए अधकार काई की तरह फट जाता है। जैसे सलाई बुझती है फिर घटाटोप अंधेरा छा जाता है। डर उजाले से डरकर कुछ देर के लिए छिटक जाता है लेकिन वह पुन मेरे विचारों की ओर मडराने लगता है। सामने नदी की तलहटी में शिवचरण की बगीची है। बगीची के उत्तर-पूर्व के कोने पर एक पुराना पीपल है। जिस पर उल्लू बोल रहा है। रात के गहराते सन्नाटे में उसकी आवाज कितनी डरावनी लगती है। कलेजा मुह को आने लगता है। सुना है कभी इस पीपल के नीचे भूत प्रेतो का 'साहबा' जुडता था। पर देखा किसी ने नही। चटखारे लेकर कई लोग इसकी कहानी सुनाते हैं। पूछने पर वह सदा किसी ऐसे व्यक्ति का नाम बता देते हैं, जो भगवान के घर पहुच चुका होता है अथवा किसी दूसरे गाव में रहता हो। न कोई छानबीन करेगा, न उसकी बात झूठी साबित होगी।

पुल और सडक के निर्माण से पहले बगीची की लोतियो से कच्चा रास्ता गुजरता था। नदी के घाट पर 'नवाडा' बाधा जाता था। नदी पार करने वाले हर यात्री से मल्लाह एक आना वसूलते थे। बरसात में जब काली जोबन पर होती थी तो नवाडा खोलकर नावें अलग कर ली जाती थी और यात्रियो को नाव से नदी पार करायी जाती थी। नाव के भरत के आदमी होने तक लोग इस बगीची के छायादार पेडो के नीचे आराम करते। ढेंकुली के लिए बनाई गयी पक्की कुइया का पानी पीकर प्यास बुझाते। मैंने भी अपने कॉलेज जीवन के दिनो में न जाने इस बगीची में कितनी बार विश्राम किया था। ये बातें हैं गुलाम भारत के जमाने की।

भारत आजाद हुआ। प्रगति की ज्योति जली। गावो को शहरो से जोडने का सडको का जाल बिछा। कच्चा रास्ता पक्की सडक के पेट में समा गया। काली का पार करने के लिए धौला पुल बना। दो मजिल ऊचा। शिवचरण की बगीची ऊपर उठाई नही जा सकती थी। सो बेचारी नदी की तलहटी में पडी रह गयी अहल्या की तरह।

पुल ने मल्लाहो की रोटी रोजी छीन ली। बेचारे घाट छोडकर चले गये। तभी से यह घाट और बगीची डर के लिए बदनाम हो गये। बगीची चोर लुटेरो का अड्डा बन गयी। शहर से आखिरी बस सवा सात बजे चली आती है। इसके

बाद यह पुल खतरे का निशान बन जाता है। कोई दिन ऐसा नहीं जाता, जो वारदात न होती हो। महीने छः महीने में एकाध करल होना मामूली बात है। जिन घरों में कभी सब्जी काटने के लिए चाकू से बड़ा हथियार नहीं होता था, आज उनके बच्चे देसी कट्टे (तमंचे) लिए आवारा घूमते हैं।

सिगरेट का टोटा खींचने का आनंद तो कोई सिगरेट पीने वाला ही जान सकता है। मैं जल्दी-जल्दी कश लेता हूं। शैतान की आंख-सा जलता सिगरेट का कोयला उंगलियों को दागने लगता है। मध्यमा और अंगूठे के बीच निःशेष होती सिगरेट का तर्जनी से चुटकी लगाकर हवा में उछाल देता हूं। आतिशबाजी की 'हवाई' की तरह अंधेरे में एक लकीर खींचता हुआ सिगरेट का टुकड़ा पुल से नीचे चला जाता है। मैं यात्रा पर बढ़ जाना चाहता हूं। तभी मुझे लगता है कि कोई साया मेरे इर्द गिर्द मंडरा रहा है। मैं घिघिया जाता हूं। साया ठहाका मारकर हंसने लगता है—'डर गए अपने आपसे !'

'भला अपने से भी कोई डरता है, मैं क्यों डरूंगा ?' मैंने बहादुरी जताने की कोशिश की। किंतु थर्राता स्वर साफ बता रहा था कि तुम लकड़ी की तलवार से खाल में भूसा भरे शेर का शिकार करने वाले जवां मर्द हो। फिर भी साहस कर बोला— कौन हो तुम ?'

'अपने आपसे पूछो', उसने मेरे सवाल को मेरी ओर उछाला—'कमाल के आदमी हो, जो स्वयं के नाम गांव दूसरों से जानना चाहते हो।'

मैंने खुशामदी स्वर में कहा—'मैं जानता तो आपसे ही क्यों पूछता ? प्लीज बता दो न।'

बड़े नादान हो दोस्त ! अपनी पहचान आप नहीं कर पा रहे।' वह ठसकेदार लहजे में बोला।

अरे भाई, मैं कोई अंतर्यामी ज्ञानी ध्यानी तो हूं नहीं, जो तुम्हारी इस रहस्यमयी पहेली का हल खोज निकालूं। हां, इतना कह सकता हूं कि हर व्यक्ति अपने को नहीं जान सकता। जो जान लेता है, वह परम ज्ञानी महापुरुष हो जाता है। वैसे आज हर आदमी दूसरों से स्वयं को जनवाने का रोब झाड़ता है। देखा-सुना भी होगा। मुर्गों की औकात वाला हाथीनशीन से कहता है—'तू मुझे नहीं जानता ? व्यंजना है कि मुर्गीवाला हूं तो क्या हुआ, अमुक मिनिस्टर का साला हूं, या फिर दादाओं का दादा हूं।'

'यार, तुम वाकई बहुत समझदार हो। दार्शनिकों जैसी बातें करते हो। लेकिन हैरानी ! फिर भी अपने रूप को नहीं पहचान रहे। तुम्हारा कसूर नहीं, भ्रमवश मृग भी नाभि में छिपी कस्तूरी को पहचान नहीं पाता।'

मैं उसकी आवाज की खनक से इतना जान गया कि वह कोई युवा होता

किशोर है। इतनी छोटी वय में लड़के को बार-बार 'यार' कहना मुझे रुचिकर नहीं लगा। बड़ा बदतमीज है जो बड़ा का आदर करना भी नहीं जानता। मैंने नाराजगी जाहिर करते हुए कहा—'तुम्हें सलीके से बात करनी चाहिए। तुम मेरी उम्र के एक तिहाई मालूम होते हो।'

ठीक पहचाना।' उसने निश्छल हँसी बिखेरते हुए कहा—'अब परिचय की आवश्यकता नहीं रही होगी।'

'फिर वही पहेली, अपना नाम क्यों नहीं बताते?' मैं खिसिया गया।

'जो आपका है।' उसने बेलौस उत्तर दिया।

'वल्दियत?'

'जो आपकी है।'

'साकिन?'

जो आपका है।'

जहन्नुम में जाओ। सीधी तरह बात नहीं करोगे।' मैं झल्ला गया।

लेकिन वह वैसा ही निर्विकार बना रहा। बोला—'मेरा अता पता सब वही है जो आपका है।'

'चलो, नाम पता एक मान लेता हूँ। मगर वल्दियत तो अलग-अलग होगी।'

'नहीं जनाब। सौ फीसदी हम दोनों का बाप एक है।' उसने अपने शब्दों पर जोर दिया।

'नानसेन्स! मेरा बाप धर्मराज माना जाता है। फिर उसका कोई औरस पुत्र कैसे हो सकता है?' मैं गुस्से से पगला-सा गया और मैंने किचकिचाकर उस पर मुष्टि प्रहार कर दिया। हाथ हवा में घूम गया। एक झटका लगा। गनीमत है कि पुल की रेलिंग ने मुझे थाम लिया। वरना यह कहानी सुनाने को मैं आपके सामने न होता। नदी में जल-समाधि ले गया होता। नौजवान दूर खड़ा मेरी मूर्खता की खिल्ली उड़ा रहा था। सँभलने पर वह मेरे पास आया। कंधे पर हाथ रख उसने प्यार से पूछा— चोट तो नहीं लगी। सच गुस्सा बड़ी हराम चीज है। प्रौढ़ावस्था में गुस्सा छोड़ देना चाहिए।'

'अब मैं आपको ज्यादा परेशान नहीं करूँगा। समय की लम्बी मात्रा ने तुम्हारी दृष्टि कमजोर कर दी है। धुंधले मोटे लेंसों से पहचानने में दिक्कत हो रही है। याद करो, आज से चौंतीस साल पहले वाली अपनी शक्ल—छरहरा बदन। भरे हुए चेहरे पर उगती काली मुलायम पश्म। आँखों में चढ़ती जवानी का गुलाबी खुमार। कसरती शरीर की मांसपेशियों की उछलती मछलियाँ। हाय हाय! क्या फिल्मी हीरो वाली छवि थी।'

वह चौंतीस साल पहले का मेरा खाका खींच रहा था और मेरी धमनियों में बुढ़ापे के बोध की ओर बढ़ता शीतल होता खून उबाल खाने लगा। उसकी श्वानी

…दे जवानी का जोश पुन लहराने लगा। सब कुछ याद हो आया। मानो कल की ही बात हो। वह बोले जा रहा था—'तब कॉलिज में पढ़ते थे न! मां ने सवा सेर हलुवे का घी खिलाया था।'

'ठीक कहते हो, दोस्त! वह सब तो सपने की बातें हो गयीं। न अब मां है और न घी। अपनी कमाई में डालडा भी नसीब होना मुश्किल हो रहा है।'

'ऐसा ही होता है, दोस्त! कॉलिज का जीवन ही कुछ और होता है। 'ऐश कर ला दोस्त, कॉलिज की दीवारों में' तुम स्वयं कहा करते थे न। मां-बाप की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाते थे।' फिर उसने मर्म को छुआ—'कॉलिज के दिनों में ही हो गया विवाह। चटक चांदनी-सी आई बहू। बस हो गये 'तुलसीदास'। न जाने कितनी बार कॉलिज से भागकर रात को दो-दो बजे इसी घाट में छाती छाती पानी में घुसकर काली को पार किया था अपनी रत्नावली से मिलने के लिए।'

उसका व्याख्यान सुनते-सुनते अब मैं पूरा कालिजियेट छोकरा बन चुका था। प्रौढ़ावस्था न जाने कहां तिरोहित हो चुकी थी। मैं किलक उठा—'तुम ठीक कहते हो, दोस्त! तुम मेरे ही प्रतिरूप हो।'

'शाबाश! देर दुरुस्त आयद।' उसने मुझे शाबाशी दी।

अब मैं हुलसकर बोला—'बीते दिनों की याद दिला दी तुमने। लेकिन यार, तब मुझे डर नहीं लगता था। पिताजी ने कई बार मुझे वक्त-बेवक्त आने के लिए बरजा भी था। उपदेश भी दिया कि बेटे बुजुर्गों का कहा मानो। अकेले सफर मत किया करो। सच, तब रास्ते में दूसरा राहगीर मिलने पर बड़ी प्रसन्नता होती थी। बातें करते रास्ता कब कट गया, पता ही न लगता था और आज रास्ते के किनारे खड़ा हर आदमी साक्षात शैतान लगता है। न जाने कब पेट में रामपुरी उतार दे। देखिए न, आज मैं कितना डरा हुआ हूं। काली की धार मुझे मौत की पगडंडी लग रही है। अभी कोई शिवचरण की बगीची में से बाहर आएगा और मेरा कत्ल कर पुल से नदी में फेंक देगा। अंधेरे में खड़ा हर पेड़-पौधा मुझे चोर-लुटेरा जान पड़ता है।'

वह ठहाका मारकर हंसा। बोला—'बड़े भोले हो। दो-दो शासन तंत्रों की चक्की का भार तुम्हारे सिर में लदा है और इतना भी नहीं जानते कि तुम डरी हुई सरकार के असुरक्षित नागरिक हो।'

'क्या मतलब? मैं समझा नहीं।' उसकी बात मेरी समझ में नहीं आयी।

'देखो दोस्त, जब सरकार निरंकुश और स्वेच्छाचारी होती है तो जनता डरी हुई रहती है। कानून का शिकंजा खिंचा रहता है और जब जनता उच्छृंखल स्वच्छंदचारी हो तो जान लो सरकार डरी हुई है। वोट की राजनीति में हमेशा सरकार भयभीत रहती है। परिणामतः कानून के हाथ-पैर कमजोर हो जाते हैं। कानून का पालन कराने वाली वर्दियां तक चोर डाकुओं जैसा व्यवहार करने लगती

हैं। सामान्य नागरिक का जीवन असुरक्षित हो जाता है।'

मैं उसकी वाक्-पटुता पर दंग रह गया। बोला वही—'आओ, मैं तुम्हें घर तक पहुंचा आऊं। वरना सारे रास्ते तुम्हारे मन में उपजा डर तुम्हें डराता रहेगा।'

मैं चुपचाप उसके साथ हो लिया। सारा गांव निद्रा की गोद में बेसुध था। केवल हमारे घर में लालटेन टिमटिमा रही थी। अडोस-पडोस के पांच सात आदमी बैठे थे। जमीन लीपकर पिताजी को नीचे लिटाया हुआ था और पंडित दीनानाथ शास्त्री उन्हें मोक्षदात्री गीता सुना रहे थे।

देहली पर पहुंचकर मैंने पीछे मुडकर अपने साथी को अंदर बुलाना चाहा, लेकिन वह जा चुका था और डर मेरे साथ प्रवेश करने के लिए उतावला हुआ खडा था। पर अब वह दूसरा मुखौटा ओढ चुका था। हुआ भी वही जिस बात का मुझे डर था। मुझे अपने पास खडा देख पिताजी की आंख की कोरों से दो बूंद पानी रिस आया और उनकी गर्दन एक ओर लुढक गयी। आज शाम से ही उनकी जुबान स्थिर हो चुकी थी। बाहर गली में वह कुत्ते समवेत स्वरों में शोक प्रस्ताव पारित करने में व्यस्त थे।

गोरे हाथ

'अरे अनत !' वह मुझे दरवाजे पर खड़ा देखकर ऐसा चौंकता है, मानो किसी शरारती बच्चे ने खड़े आदमी को पीछे से धकेल दिया हो। वह चील की भाति हाथो के डैने फलाए मेरी ओर दौड़ता है, मुझे भुजाओ मे भरकर चारो ओर घुमा देता है। कहता है—'तू हमेशा मुझे परेशान करता है। भला यह भी कोई तुक है, आने की खबर तक नही दी और जादुई चिराग के जिन की तरह छाती पर आ चढ़ा।'

शिकायत वाजिब है। मैं उसे वास्तव मे आश्चर्यचकित कर देना चाहता था। उसे चौंकाने मे मुझे बड़ा मजा आता है। स्कूल के दिनो मे न जाने कितनी बार उसे यों ही चौंकाया है।

'बाबूजी देर हो रही है। चार पैसे कमाने का वक्त है।' तांगेवाले की खरखरी आवाज ने हमारे मधुर मिलन मे 'ककड़ी' फेंकी।

पॉकेट से पर्स निकालकर तागे का किराया चुकता करता हू। सामान उठाकर हम दोनो बाते करते हुए अदर चले जाते हैं। सफर की थकान से सारा शरीर टूट रहा है। बिना कपड़े उतारे सोफे मे धसकर टाई की गाठ ढीली करता हू। धीरेंद्र कोने मे रखी पढ़ने की टेबल पर बैठते हुए शिकायत करता है—'तुझे हास्पिटल की रोटियां अच्छी लगने लगी हैं। जब मैं विवाह न करने की सोच रहा था तो मेरी जान खाता था कि विवाह कर ले और जब विवाह हुआ तो आप हॉस्पिटल मे जा लेटा। लिख भेजा—'हार्दिक बधाई। ऑपरेशन हुआ है, आने के लिए क्षमा चाहता हू।'

उसकी स्नेह सिक्त शिकायत मुझे द्रवित कर जाती है। सोचता हू, कितना बदनसीब हू मैं? मित्र की खुशी मे सम्मिलित न होने का गम छाती मे बलगम-सा अटक गया। यदि मेरा एपेडिक्स का आपरेशन उस दिन न हुआ होता, अस्पताल की बेड तो क्या शायद सींखचो की दुर्लघ्य दीवारे भी मुझे रोक न पाती। और उस दिन सारी रात मैं सो न सका था। कभी धीरेंद्र का सहगा बधा चेहरा उलाहना देता-सा लगता तो कभी भाभी की गुडिया जैसी मूर्ति आखो मे तैर जाती। नीद की झपकी आती तो बड़बड़ाता—'धीरेंद्र भाई, मुझे क्षमा करना।

चाह कर भी आ नही सकता। भाभी, यह मेरा बाल-सखा है न धीरेन्द्र! बडा भावुक है, बिलकुल बच्चा। इसे सभाल कर रखना।'

आज धीरेन्द्र को बधाई और भाभी को मुह दिखाई देने आ पहुचा हू, सोफे पर फैला मैं जूत और मोजे उतारता हू। कोट को सोफे की बैक पर डाल देता हू। धीरेन्द्र की शिकायती कची बराबर चल रही है और मैं मूक-सा सुने जा रहा हू। वाक्-प्रवाह मे बाध देने की गरज से बोल उठता हू —'अबे झक्की! पिनपिनाता ही रहेगा या खाने-पीने का प्रबन्ध भी करेगा। सुन लिया। नहीं आया तो कौन क्वारा रह गया तू।'

'ओह! भूल ही गया कि आलमपनाह की सवारी सफर तय करके आई है और कुछ नाश्ता-पानी भी होना है।' वह ऊची आवाज म पुकारता है—'भई, सुनती हो। अनत आया है। गम पानी करके बाथरुम म रखवा दो और नाश्ते का प्रबन्ध भी कर लो।'

बाथरूम से लौटकर देखता हू, धीरेन्द्र वहा नहीं है। शायद नाश्त के प्रबन्ध मे भाभी के साथ है। कघी शीशे से निबट कर सोफे पर टागें पसार देता हू। सिगरेट सुलगाकर हवा मे धुए के छल्ले फेंकने लगता हू। दरवाजे के सामने स भाभी गुजरती है। उनके आने जाने का एक विशेष कोण है, क्योकि वह कई बार कमरे क सामने म गुजर चुकी हैं और अभी तक मैं उनका चेहरा नही देख सका हू।

कुछ ही क्षणों म न जान कितना सोच जाता हू। एकाएक सशय होता है जरूरी नही कि भाभी उवशी ही हो। कल्पना के दपण मे दरारें आ जाती है। सिहर उठता हू। साचना बन्द कर भ्रमजाल से छुटकारा पाने के लिए खडा हो जाता हू। रैक के निकट पहुचता हू। निष्प्रयोजन उस पर रखी किताबों को उलटता-पलटता हू। सुनहरे रग की जिल्द वाली नोट-बुक हाथ म आती है। पन्ने खोलता हू। अन्दर के पष्ठ पर कुछ पक्तिया अकित होती हैं। शायद एक कहानी की रूपरेखा ह। एक पैराग्राफ लिखा भी है। सोफे पर लेटकर पढता हू।

'अधूरी कहानी है। कुछ पल्ले पडी।' धीरेन्द्र न जाने कब मेर सिरहान आ बैठा था।

'ऊन्हू!' मैंने नकारात्मक सकत मे सिर हिला दिया।

'मैं सुनाता हू। थीम कैसा है। तू ता अपन को तीसमारखा। कहानीकारो म समझता है। प्यारे, हम भी कुछ कम नहीं।' धीरेन्द्र ने दुलार से बाला का पकडकर मेरा सिर हिला दिया।

अबे भूखे भजन न होय गोपाला। फिर तेरी 'अलिफ लैला' कभी सुनूगा।' मैं लेटे-लेटे उसकी चिबुक पकडकर हिला देता हू।

'सच, तू बड़ा पेटू है। खाने के लिए जीता है। भाभी लाडले देवर के लिए पनीर के पकौड़े तल रही है। बस पाच-दस मिनट और इन्तजार कर ले' और आखो से शरारत टपकाते हुए कहता है—'जो मजा इतजार मे ह ।'

'बोलना बन्द कर और कहानी सुना।' मैं उसे मीठी झिड़की देता हू।

वह कहानी का सूत्र सभालते हुए कोट की जेब से पस निकालता है। मैं उत्सुकता से उसके हाथो की ओर देखता हू। बटुआ खोलकर वह एक फोटो निकालकर मेरी ओर बढ़ा देता है, कहता है—'यह है अनुपमा।'

'वाह, वडरफुल !' मेरे मुह से निकल जाता है। उसके हाथ से फोटो लेता हू। कई कोणो से परखता हू। तस्वीर हर कोण से प्यारी लगती है। चेहरे पर एक अजीब सी स्निग्धता थी और सौम्यता के आवरण से यौवन मुखरित हो रहा था। आखें मदभरे प्याल-सी लगती हैं। होंठो की सम्पुट मे हल्की सी जुम्बिश है। आजानु हाथ म एक-दो किताबें हैं और कलाई पर घड़ी बधी है। चुस्त लिबास मे फिट की गई छरहरे गात की किशोरी पारम्परिक कैलेंडर कालिया-मदन मे चित्रित नागिन-सी जान पड़ती है। मैं एकटक देखता रहता हू। धीरेन्द्र गाइड की भाति कमेण्ट्री आगे बढ़ाता है—'कॉलेज लाइफ की फोटो है। अनु कॉलिज म अपनी मजुल मुस्कान म चादी की घटियो की खनक लिय प्रवेश करती तो सडक छाप मजनू दरवाजे के दायें-बायें मुगलकालीन दरबार के रिवाज के अनुसार दस्त-बदस्ता खड़े हो जाते और उनके सपनो की राजकुमारी इठलाती-इतराती बीच स झूमती हुई अपनी क्लास रूम की ओर बढ़ जाती। फिर रह जाती कुछ ठडी सासे, फिजा म सरसराती। अनुपमा पढ़ने म मेधावी और खेल-कूद म तेज-तर्रार थी। अनेको मेडल उसके हाथ म पहुचकर अपने को धन्य समझने लग थे। वह नाटको की हीरोइन के रूप म गजब ढाती थी और मजाक मे बिलकुल बेबाक थी। उसके रूप की चमक से आखें चौंधिया-सी जाती थी। सभी मुक्तकठ प्रशसक थे उसके। यानी वह हर दिल-अजीज था, पर उसके दिल का कोई दिल-अजीज न था। केवल मधुमालती उसकी दिलजानी थी। हमराज और हमसाया थी। कभी कभी वह कासिद का काम भी कर देती थी और इनाम म दो-चार थप्पड पा लेना उसका अधिकार था।

'एकाएक किसी के आने की पदचाप निकटतर सुनाई पड़ती है। मेरी गर्दन दरवाजे की ओर घूम गई। आसमानी रग की बहुमूल्य साड़ी म लिपटी गुड़िया सी भाभी प्रवेश करती हैं। मैं अचम्भे मे रह जाता हू। यह क्या ? एक एम० ए०, पी-एच० डी० लेक्चरर की पत्नी हाथ भर लम्बा घूघट निकाले। मुह का जायका सब्जी मे अधिक नमक पड जाने जैसा हो गया। मन हुआ कि धीरेन्द्र को कन्धो स पकड़कर झकझोर डालू। कहू—'अरे बेवकूफ तुझे इस शहजादी से सुसस्कृत लड़की दुनिया म और नही मिली ?'

भाभी के साथ उनका बारह-तरह वर्षीय ब्वाय सर्वेण्ट नाश्ते का सामान लिये है। भाभी अपने सुघड हाथा से मेज पर नाश्ता चुनने लगती है। कुछ देर पहले झलक पाए हाथ मेरे बिलकुल निकट हैं। मन का विषाद भूलकर गोरे गोरे चिकने हाथा से भाभी के सौन्दर्य की कल्पना करता हू। आसमानी परिधान मे लिपटी वह मुझे आकाश से उतरी परी लगती है। शरारत से जरा खखारता हू। निमिष भर हाथ प्लेट सजाने से रुकते हैं। झीने पर्दे से भाभी मेरी ओर कनखियो से देखती है, और पुन चाय की केतली आदि सवारने लगती हैं।

'मुह दिखाई दिए बिना भाभी का मुह देखेगा क्या ?' धीरेन्द्र वार करता है।

'अबे, तेरी तरह बेवकूफ नही हू।' और फिर भाभी की ओर मुखातिब होता हू—'भाभी, ऐसा बेनजीर तोहफा प्रेजेण्ट करूगा कि सारी उम्र याद किया करोगी इस नालायक देवर को।'

भाभी ने हमारी चुहलबाजी मे दखल नही दिया और जिस हसचाल स आई थी वैस ही थिरकती हुई लौट गई। धीरेन्द्र ने कहानी का सूत्र पुन सभाल लिया। उसका स्वर वेदना म डूब गया। मायूसी की हल्की सी पर्त चेहरे पर उभर आई। वह कहता है—'एकाएक अनुपमा कॉलेज से मौसम बहार की तरह गायब हो गई और कॉलेज की चार-दीवारी के अन्दर खिजा का मौसम छा गया। रीडिंग रूम और कैण्टीन वीरान हो गए। स्टाफ रूम म नौजवानो, प्रोफेसरो की फुसफुसाहट बद हो गई। कॉलेज गेट पर मजमा लगाने वाले छात्र लॉन की घास पर पसरे पडे दिखाई देने लगे '

धीरेन्द्र पकौडो की तश्तरी मेरी ओर खिसका कर कहना जारी रखता है—'फिर एक दिन मधु के कधे पर हाथ रखे अनुपमा प्रकट हुई। शरीर से बडी कमजोर लग रही थी। चलते हुए पैर डगमगाते थे। उसकी सीप-सी आखें अन्दर कोटरो मे धस गई थी। चेहरे पर मानो किसी चक्की राहने वाले ने टाकिया लगा दी हो। चेचक ने उसे कुरूपा बना दिया था।'

बीमारी स उठकर अनुपमा शीशे के सामने खडी हुई तो शीशा उसे मुह चिढाता-सा लगा और अनुपमा सारा दिन तकिया गीला करती रही। उसके पिता रिटायर्ड जज साहब सात्वना देते है—'अनु बेटी बाहरी सौन्दय के अलावा भी एक और सौंदय है—'ज्ञान के द्वारा आत्मा का सौन्दय। उस बढाओ, बिटिया!'

खैर ज्ञान के बल पर कोई सुयोग्य दामाद पाने की लालसा म जज साहब अनु को जबदस्ती पुन कालेज भेज देते हैं।

अनु ज्ञान की पिपासा लिये पुन कालेज आई तो उसे सब कुछ बदला-बदला सा लगा। सब उसे देखते हैं। कानाफूसी करते हैं। चारो ओर घुटन-सी बिखरी लगती है।

'जबदस्त ट्रेजडी' मेरे मुह से बबस ही निकल गया और सहानुभूति मे कह गया—'बेचारी अनु ! भाग्यहीन।'

'अनु भाग्यहीन नही है बे !' धीरेन्द्र मुझे झिडकता है—'भाग्यहीन वे लोग होते हैं, जो भाग्य को सर्वोपरि मानकर निठल्ले बने अपने का भाग्य के हवाले कर देते हैं। अनु पढने म हाशियार थी, लगन से जुट गई पढाई मे और एम० ए० मे यूनिवर्सिटी टॉप की।

'सच।' मैंन आश्चय व्यक्त किया।

'मैं झूठ बोल रहा हू ? सब तेरी तरह गधे हैं क्या ? कहानीकार बनने के चक्कर म पढाई छोडकर तून क्या पाया ? बम्बई की सडको पर जूते घिसाए और अब दिल्ली म प्रूफरीडरी मे सिर खपा रहा है।' उसने मुझे ताना दिया और बोला—अनु ने विवाह कर लिया है। अब वह रिसच के लिए अमेरिका जान वाली है।'

'भाभी तो रसोईघर मे ही चिपक गई। बुलाओ तो। चाय पर कम्पनी नही करेगी क्या ?'

'तू खा ले। मैं साथ दे रहा हू।' चाय प्यालो मे डालते हुए धीरेन्द्र बोला—तुम्हारी भाभी जरा पुराने विचारो की ह। अकेली खाना पसन्द करती ह।'

'तो हजूर घर आा मेहमान का अपमान करान पर तुले है। मैं भाभी को साथ लिये बिना तरे छत्तीस पदार्थ न छूऊगा।' मैंन हाथ का पकौडा प्लेट म छोड दिया।

'नाराज मत हा मेरे भाई, बुलाता हू।' कहकर वह रसाईघर मे चला गया। मैंने भाभी के प्रथम दशन की भेंट मे देने के लिए अटची खोलकर साडी और नकलस निकाली। मसखरी करन के लिए 'परिवार नियाजन' पुस्तिका निकालना भी नही भूला। तभी धीरेन्द्र न भाभी के साथ कमरे म प्रवश किया और व्यग्य की चुटकी लेत हुए बोला—'अनु जी, लाडला देवर तो शायद मिले बिना ही चम्पत हाने की साच रहा था।'

'कौन, अनु ! भाभी !' मेरे हाथ की पुस्तक अटची मे ही छूट गई सामन भाभी आखें नीची किए खडी थी। वीभत्स चेहरे से मेरी आखें फिसलकर उसके गोरे-गारे हाथो पर चिपकी रह गईं।

ठण्ड

मेरी गली सही-साझ स वीरान हान लगती है। नो बजते न बजत लोग अपने दडबेनुमा मकानो मे ममा जात हैं। सबके टी० वी० ऑन होत हैं। वे किसी-न-किसी हिंदी सीरियल का आनन्द लत होते है। जिनक पास अपन टी० वी० नही व पडोसियो का आराम हराम करन पहुच जाते हैं।

दिसम्बर की गजब की ठड गली म पसरी होती है। मैं आदतन बाहर बिजली क खभे के पास जा खडा होता हू। धुधियानी रात मे बिजली का लट्टू मरियल सी पीली रोशनी उगलता हाता ह। रात चादनी है। लेकिन चन्द्र देवता धुध क झीन घुघटे म मुह दुबकाए होते है। मगर मन उसक दरस-परस के लिए लालायित हो उठता है। चदा राजा या ता दिखाई नही देते हैं यदि दिखाइ दे भी जाते ह ता किसी रूपसी की बिंदी मात्र होत है।

ठड की सुइया सीने म उतरने लगती हैं ता मेरे अहसास लौट आत हैं। ओवर कोट के कान खडे कर लेता हू। फर की टोपी और उसके ऊपर से कानो पर खीचे मफलर की गाठ को थाडा और कस लेता हू। दोनो हाथ कोट की जेबो म डाल लेता हू और आनन्द म ठिठुरती दिल्ली की इस अनगढ कालोनी की अनगढ गली मे खडा किसी बर्फीले पहाड पर बस शहर की नही गाव की सुखद कल्पना मे खो जाता हू। पर आज नही

एक आकृति मेरे पास आ खडी होती है। पहचानने की काशिश करता हू। आकृति आदमी की ह। वह घुटनो तक धोती बाध कुर्त्ता-सदरी पहन, ऊपर गडरिये का बुना एक मोटा-सा काला कबल लपेटे है। मैं हक्का-बक्का रह जाता हू। इतनी रात गये, इस कडाके की ठड मे शायद वह रास्ता भूल गया है और नाहक इधर आ गया है क्योंकि मेरी इस बद, अधी गली से राहगीरी नहीं होती। इसलिए ही उसका यो मेरे पास आ खडा होना मुझे आश्चय चकित किये है। इस कुल्फी होती रात म कहा जायगा ? बेचारा परदेशी। हम दोनो के बीच धुध का अल्प पारदर्शी पर्दा ह। इसलिए मैं उसका चेहरा स्पष्ट नही देख पा रहा हू। चीन्हना आसानन ही।

एकाएक मुझे डर लगने लगता है। मैं ठड मे तो नही कांपा था, पर डर से थरथरा गया हू। डर, वह भी आदमी का। न जाने कौन हो? चाकूबाज, लुटेरा कोई भी तो हो सकता है। क्योंकि रोज सुबह के अखबारो मे पढता हू। सडक चलते आदमी को चाकू भोक दिया। टी०वी० देखते परिवार को कमरे मे बद कर लूट लिया गया। बेचारी सुरक्षा की हालत बेवा औरत-जैसी हो गयी है। कोई भी सरे आम इज्जत पर हाथ डाल देता है।

दस कदम पर ही तो घर का दरवाजा है। खिसक लू। खैरियत इसी मे है। मैं पलटने को होता हू लेकिन आकृति और निकट हो आती है। इससे पहले कि मेरी चीख निकलती, वह मुझे पहचान कर मेरे कधे पर हाथ रख देती है। मेरा शरीर लरज जाता है। मानो किसी ने भारी वजन मेरे कधे पर लाद दिया हो। पाव धरती मे धसकते से लगते है। मैं यथावत खडा रह जाता हू। आकृति ने ठड के मारे कबल से अपना मुह ढका हुआ था। घूघट वाली हरियाणवी महिला की भाति केवल उसकी आखे ही दिखाई देती थी। उसने कबल को मुह से नीचे करते हुए मेरा रास्ता रोका। मैं घिघिया जाता हू। इस कडाके की ठड मे भी पसीने की एक-दो बूदे मेरे माथे पर आ बैठती है। आकृति मेरी खस्ता हालत देखकर तुरन्त बोल पडती है—'नमस्ते, बडे भइया!'

नमस्ते!' आवाज पहचान कर तपाक से उत्तर देता हू—'अरे सोमू तू! कब चला गाव से? कितनी ठड है! देर कैसे हो गयी? गाडी तो साढे पाच आ जाती है!'

मैं कहता चला गया। यह मेरी पुरानी आदत है। शुरू हो गया तो सामने वाले का नम्बर नही आने देता। सोमू मेरी इस बुरी आदत से अच्छी तरह वाकिफ है। उसने मेरे मुह से प्रवाहित होती वाक्-सरि को बाध लगाया—'भइया, मुझे भी तो कहने दो, या फिर आप ही बोलते रहेगे।'

हा-हा, कहो।' मैंने उसे चांस दिया।

'आपकी चिट्ठी मिली थी। सोचा, चार दिन बाद पानी का ओसरा है। गन्नो की बुगाई भी मिल मे दो दिन बाद जाएगी। दो दिन फुरसत के है। आपने बुलाया है तो मिल ही आऊ। गाडी सिर्फ चार घटे लेट थी। इसलिए देर हो गयी। क्यो, बडे भइया! ये गाडिया लेट क्यो होती है?'

'तुम नही समझोगे। राज की बाते है। सरकारी काम ऐसे ही चलते है ड्यूटी मे कम और ओवर टाइम मे ज्यादा। तनख्वाह बच्चो के लिए होती है और ओवर टाइम खुद के लिए। बीवी से छिपाकर गुलछर्रे उडाने के लिए। लेकिन तुम क्यो पूछते हो? सरकार सब जानती है।' मेरी गाडी फिर से रफ्तार पकड गयी। रोक्नी रस ही पडी—'भइया अदर न चलोगे, क्या यही खडे-खडे सारी बाते कर लोगे? कितनी जबरदस्त ठड है!'

'ठीक कहते हो। हम अदर चलना ही चाहिए। बहुत ठड है। दिल्ली के साले मौसम हो कुछ ऐसे होते हैं। सब उधार के। गर्मियो म गर्मी, सर्दियो मे सर्दी। बफ पडती ह शिमला म, ठिठुरते हैं यहा। दिल्ली का अपना है भी कुछ। खाना-दाना, मौसम सब बाहर के। और ता और, ससद म दिल्ली का प्रतिनिधित्व करने वाले नेता तक बाहर के होते हैं। चलो, हम ठड से बचना चाहिए। नुकसान पहुचा सकती ह। खासी नजला-जुकाम, निमोनिया ।'

'कुछ भी हो सकता है।' उसने फिर मेरी बेतहाशा दौडती गाडी के ब्रेक कसे और हम अदर आ गये।

बातों का अनत सिलसिला। सूत्रधार मैं और व्याख्याता वह—'चिट्ठी ।'

'कल मिली थी।'

'क्या सोचा ?'

'आप अपना हक चाहते हैं ?' सवालिया ढग का उत्तर।

'मजबूरी है। बच्चे सयान हो गये हैं। खच बढ गया है।'

'खच तो हमारे भी बढे हैं। बच्चे भी सयान हुए हैं।'

'ठीक है। अपनी अपनी जिम्मेदारिया निभाओ।

सो तो निभा रहे हैं। लेकिन आपने हम सकट म डाल दिया है।

कैसे ?'

'हिस्सा माग कर।'

'इसमे गलत क्या हुआ ?'

सारा ही गलत है। जमीन के टुकडे हो जायेंगे ता हमारी आमदनी को धक्का लगेगा।'

'लेकिन मुझे भी ता अपनी जिम्मेदारिया निभानी हैं। उसके लिए पैसा चाहिए और पम के लिए मुझे अपना हिस्सा चाहिए।

'वाह! बडे भइया यह हुई न मने की बात। आप ता यहा भी कमा रहे हो और अपना हिस्सा लेकर अपनी आमदनी भी बढा लोगे, लेकिन हम क्या करगे? जिसकी मा को मौसी कहेंगे ?

मैं समझा नही।'

क्या आप अपनी जायदाद मे म हम हिस्सा देंगे ?'

'कौन सी जायदाद ?'

'यह लाखो का मकान प्रोविडेन्ट फड। कोई छोटा मोटा खाता बक मे भी होगा ही।

म हैरान रह गया। थाडा परेशान भी हुआ। कुछ समझ म नही आया कि वह क्या कह रहा है? उसके कहने का अभिप्राय क्या है? जबकि मतलब साफ

था। एक क्षण दो क्षण, चुप्पी। फिर मुखरित होता हू—'यह सम्पत्ति मैंने कमाई है अवश्य, पर इस पर तो मैं भी अपना अधिकार नही मानता। मकान बच्चो के सिर छिपाने के लिए है। जिसमे आधा फड लग चुका है। शेष बच्चा की पढाई लिखाई और मेरे बुढापे का सहारा है। बैंक मे खाता जरूर है, लेकिन कुल बैलेंस दस रुपए पाच पैसे है। चाहो तो उसमे से हिस्सा ले लो। या फिर सारा ही तुम ले लो। मुझे कोई आपत्ति न होगी।'

'मजाक करते हो। साफ क्यो नही कहते कि देना नही चाहते। फिर हमसे कैसी हिस्सेदारी चाहते हो?'

'देखो मोमू, तुम लोगो की हैसियत मेरे से कई गुना अधिक है। मैं तो तुम्हारा पासग भी नही। मेरा मकान और फड तुम्हारे एक ट्रैक्टर के मोल के बराबर है। फिर भी मैं, तुम्हारे कमाए धन मे से लाल पैसा भी नही चाहता।'

'चाहिए भी नही, और माग भी रहे हो।'

'मुझे सिर्फ पैतक सम्पत्ति मे से हिस्सा चाहिए। वैसे मैं तुम्हारे ट्रैक्टर-ट्यूबवेला म से हिस्सा बाट लेने का भी अधिकारी हू। चूकि मेरी पैतृक सम्पत्ति से अर्जित धन भी तो तुम्हारे साज-बाज मे लगा है। कभी सोचो, मेरी हथेली पर पजी रखने की बात।'

'हू।'

'लेकिन ईमानदारी की बात। मैं तुमसे कुछ भी नही चाहता। सिर्फ अपना हिस्सा चाहता हू। जो ईमानदारी के साथ मिल जाना चाहिए। जिसका वायदा तुमने पिताजी की मत्यु के समय किया था और मेरा बाप बनने की पूरी जिम्मेदारी तुमने अपने ऊपर ली थी। याद है, तुमने कहा था—'बडे भइया, मत रोओ। मा-बाप सदा किसी के जिंदा नही रहते। हम तुम्हारे बाप हैं। बाप की सारी जिम्मेदारी हम निभाएगे। अब शराफत का तकाजा है कि ईमानदारी से बाप का फर्ज अदा कर दो।'

वह चुप हो गया। उसके चेहरे पर विद्रूपता खेलने लगी थी। मानो वह कहना चाहता हो, भइया जब बच्चा रोता है तो उस गाव की औरतें अफीम देकर सुला देती हैं। हमने भी तुम्हें बाप बनने की अफीम चटा कर गहरी नीद सुलाया था। न सुलाते तो लाभ कैसे उठाते। चार दिन आगे पीछे बरतन भाडे बट जाते। तुम पढ लिख गए थे तो नौकरी से चिपक गए। हम तो गाव की जमीन से ही चिपके रहना था। फिर देखती आखो तुम्हारा हिस्सा अलग कर घाटा उठाना कहा की बुद्धिमानी थी।

हा, वे कम पढ लिखे भी बुद्धिमान और मैं पढ लिखकर भी मूर्ख यह जानकर भी कि मामू बचपन से ही मेरा हितैषी नही रहा। क्या चखी मैंने उसकी दाथा अफीम? उसने बचपन मे बेला के लिए रानव न भिगाने पर मेरे डाटने मे मगी

चोली काट ली थी। शायद पटकनी भी देता, लकिन अपनी बैठक से जब पडासी जग्गू न यह माजरा देखा तो दौडकर बीच-बचाव किया। सामू बचपन स ही तगडा था और मैं मीकिया पहलवान। फिर भी मा ने दो थप्पड मुझे ही रसीद किए थे नालायक, बडा होकर छोटे भाई से झगडा करता है।' इसके बाद भी अनक ऐसी घटनाए हुई थी, जो जवानी की सडक तक आते-आते अनगिन पगडडियो की तरह खो गयी थी। शायद ज्वानी बचपन की सभी भूलो को माफ कर अपना बडप्पन कायम कर लेती ह।

सामू बकरी पर आ गया— भइया, सोच-समझकर कह रहे हो।'

'सीधी-सच्ची बात मे सोचना समझना क्या ?'

जिन्हे आप सीधी-सच्ची बातें समझते हैं, वह दुगम पहाड की सडक है। जिस पर चढना इतना आसान नही, जितना आप समझ रहे हो।

'मतलब ?'

'मतलब साफ है। तुम राम हो सकते हो पर मैं भरत बनना बिलकुल पसन्द नही करूगा। त्रेता की बाते त्रेता मे सही हो सकती हैं, आज की राजनीति कहती है सत्ता का राजमुकुट पहनकर वापस मत लौटाओ।' बडे भइया, मैं ऐसी गलती नही करूगा।'

ओह ! यह पाचवी पास गावदी कितना नीतिज्ञ हो गया है। मेरा अन्तमन तिलमिला उठा। पर असहाय। बहुत सोचा, दूर तक विचारा। मेरा लिखना पढना सब बेकार गया। मुझे अपना कद उसके सामने बौना लगने लगा। फिर भी तिनके का सहारा लिया, मोमू ! हम इतना क्षुद्र नही होना चाहिए। हम ईमानदारी से एक-दूसरे का अस्तित्व स्वीकारना चाहिए। वर्ना ।'

'क्या होगा ? उसन मेरे हथियार भोथरे होते देख बीच म ही टोका।

जग-हसाई। लोग कहेंगे कि उस मन्साराम का परिवार डूब गया जिसकी चौहद्दी म न्यायप्रियता मशहूर थी। जिसन अनक टूटते बिखरते परिवारो को विनाशलीला स बचाया। आज उसी के सपूत महाभारत के लिए रणभेरी फूकने को तैयार खडे हैं।'

भइया, मैं ज्यादा पढा लिखा तो हू नही। पर आप ही कहते हैं कि समरथ को नही दोष गुसाईं।

'तो न्याय नाम की कोई चीज नही। लोग इन्साफ की बात तो कहेंगे।'

जिन लोगो पर आपको विश्वास है, वे सब गाव मे रहते हैं। जिन सवधियो पर आपका भरोसा है उनमें कोई कृष्णावतार नही। वे ऊपरी मन से तो तुम्हारे पक्ष में हो सकते हैं, लेकिन व सब हमारे हैं। उनके दिन हमारे स जुडे हैं। वे हमारे बिना नही जा सकते। तुम शहरी लोग उनका क्या कभी साध सकते हो ?'

मैं सन्न रह गया। मुझे अपने चारो ओर खडहर-ही खडहर और उन पर उगा घनछत कटीला जगल दिखाई पडने लगा। फिर खडहरो म चिमगान्डो की चिचिहाट और उल्लुओ की डरावनी आवाज सुनाई पडने लगी। पडो की उलझी टहनियो पर लटके सापो की फूकार मेरे कानो म गूजन लगी। खडहर मे उगता सन्नाटा मुझे लपेटने लगा। लगा कि सामने वाला व्यक्ति मेरा भाई नही, मेरे भाई वेश म कोई शैतान है, पिशाच है।

और सचमुच वह गोरा चिट्टा चेहरा धीरे धीरे काला पडने लगा। स्याही स भी गाढा काला। उसके खौफनाक जबडो म भयानक दात और पजो मे लम्बे-लम्बे नाखून निकल आये हैं। उसकी आखो की कोटरो म लोहार की धधकती भट्ठी म भी तेज ज्वाला निकलने लगी है। वह मुझे दबोचने के लिए मेरी ओर बढने लगा। मैं बचने का भरसक प्रयत्न करता हू। पर सब बेकार। मैं खडहर की दीवार स सट जाता हू। मैं असहाय चिल्लाने को होता हू, पर चीख नही निकल पाती। वह आग बढकर मुझे अपनी फौलादी गिरफ्त मे ले लेता है। उसने अपने भयानक दात मेरी गर्दन म गडाते हुए बादलो की गडगडाहट जैसी गर्जना की—'समय है। सोच लो। यदि तुम अपनी बेटी अणिमा का विवाह मेरे साले के साले मे कर सकते हो तो फिर तुम्हारे बारे म सोचा जा सकता है।'

और उसने पूरी ताकत स मेरा खून निचोड कर मुझे बिस्तर पर फेंक दिया—'हाय मेरी फूल-सी बच्ची! तुझे अगूठा छाप गावदी से कैसे बाध दू। जो देखने मे हाथी का बच्चा लगता है। बोलता है तो पहाडी कौआ जान पडता है। क्या यही दिन देखने के लिए तुझे पढाया लिखाया था। नही, यह मेरे जीते जी कभी न होगा, भले ही मुझे अपना सवस्व दाव पर लगाना पडे।'

मैं तडप रहा था। मानो किसी कसाई की छुरी के नीचे रख दिया गया हू। मेरा पोर-पोर लहूलुहान हुआ जा रहा था। वह मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना दरवाजे स बाहर होते हुए बोला—'रात बीत गयी है। चलू गाडी का समय हो गया है। गन्ने छिलवाने है। कल मिल पर बुग्गी जाएगी।'

ठिठुरती रात की ठड को सुबह के वक्त जवानी चढ जाती ह। अग-अग बीध डालती है। धुध और कोहरा और अधिक गहरा जाते हैं। मैं लस्त-पस्त हुआ उसके पीछे चलकर खबे के पास आ खडा होता हू। लटटू की बीमार रोशनी खबे के पैरो पर पड रही है। गली अभी भी वीरान है। तमाम रात हलवाई की भट्ठी पर तापने के बाद पहरेदार सीटी बजाकर लिहाफो म अलसाए पडे लोगो को अपनी उपस्थिति का भास करा कर घर जाने की जल्दी म ह। मेरे कोट और टोपी के रोओ पर कोहरे ने नन्ही-नन्ही पानी की बूदें टाग दी है। ज्यो ज्यो दिन का निकाल होता जा रहा है, ठड बढती जा रही ह। यह ठड मर तन से ज्यादा मन म घुसती जा रही है, जो शायद मुझे बर्फ की तरह जमा देगी। इसी मरणासन्न स्थिति म

मेरी आखें कुहरे की मोटी पर्त को भेदकर उसका पीछा करती हैं। थोडी दूर तक मुझे उसकी कबल मे लिपटी कमर दीखती रहती है। फिर वह भूत की तरह एकदम लोप हो जाता है। वह कौन था ? भाई, शायद नही। मेरा भ्रम था। मैं थर-थर कापने लगता हू। मानो मेरे शरीर का सारा सत निकल गया है। इतनी भयकर ठड मे भी मेरी पेशानी पर पसीना चुहचियाया था।

□□

बलबीर त्यागी

जन्म ७ जुलाई, १६३५ ई०
जन्मस्थान ग्राम-पोस्ट—पुरा (मुजफ्फर नगर) उ० प्र०
शिक्षा गांव, मुजफ्फरनगर, माछरा (मेरठ)

प्रकाशित पुस्तकें—

(i) तूफान के उस पार (उपन्यास)
(ii) जंजीरें टूटती हैं "
(iii) जग लगा आदमी (कहानी संग्रह)
(iv) रेत का घर "
(v) दुखीदास (व्यंग्य-संग्रह)
(vi) पैंट कंधे पर "
(vii) दुखीदास का प्रमोशन "

इनके अतिरिक्त एक व्यंग्य संग्रह शीघ्र प्रकाश्य, एक उपन्यास पर काम जारी तथा बाल साहित्य की नौ पुस्तकें भी प्रकाशित। एक कविता संग्रह की पांडुलिपि भी तैयार है।

संपर्क—'प्रकाश पुंज', 460-सी, पूर्वी बाबरपुर
(छज्जूपुर) शाहदरा, दिल्ली-110032